जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2534

श्री महावीर स्वामी दि. जैन मन्दिर टिपटा, कोटा (राज.)
में विराजमान भगवान् आदिनाथ की 800 वर्ष प्राचीन प्रतिमा

वैशाख, वि.सं. 2065 मई, 2008

मूल्य 15

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

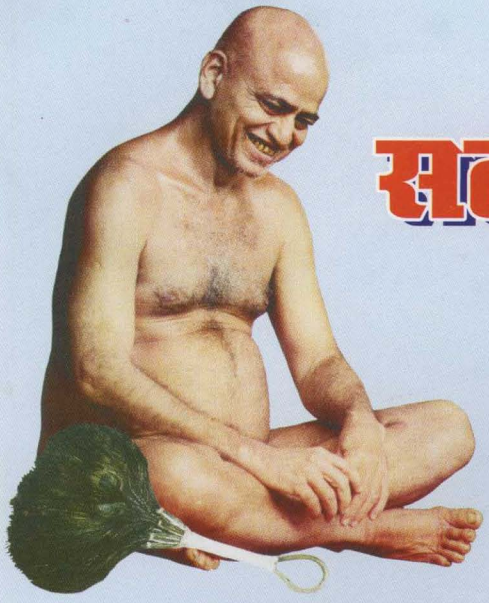

सत्य पर आक्रमण

महाकवि आचार्य श्री विद्यासागर जी

मूकमाटी महाकाव्य की निम्नलिखित काव्यपंक्तियाँ विषयवासनाओं में लिप्त होने के दुष्परिणाम एवं उनके दमन के सुपरिणाम की अत्यन्त प्रभावशाली व्यंजना करती हैं।
सम्पादक

लोकख्याति तो यही है
कि कामदेव का आयुध फूल होता है
और
महादेव का आयुध शूल।
एक में पराग है
सघन राग है
जिसका फल संसार है

एक में विराग है
अनघ त्याग है
जिसका फल भव-पार है।

एक औरों का दम लेता है
बदले में
मद भर देता है,
एक औरों में दम भर देता है
तत्काल फिर
निर्मद कर देता है।

दम सुख है, सुख का स्रोत
मद दुःख है, सुख की मौत!
तथापि
यह कैसी विडम्बना है
कि सब के मुख से फूलों की ही
प्रशंसा होती है
और शूलों की हिंसा!
क्या यह
सत्य पर आक्रमण नहीं है?

'मूकमाटी' महाकाव्य
(पृष्ठ 101-102) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

मई 2008 मासिक वर्ष 7, अङ्क 5

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ काव्य : सत्य पर आक्रमण आ.पृ. 2
: आचार्य श्री विद्यासागर जी

◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ आ.पृ. 3

◆ **सम्पादकीय** : स्थापना के तीन साबुत चावल 2

◆ **प्रवचन**

- ब्रह्मचर्य चेतन का भोग : आचार्य श्री विद्यासागर जी 5

◆ **लेख**

- मधु (शहद) भी मांसवत् अभक्ष्य ही है 4
: पं० अनन्तवल्ले शास्त्री
- धर्ममाता चिरौंजाबाई जी का समाधिमरण 13
: क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी
- संसार-परिभ्रमण का कारण : शल्यत्रय 17
: आर्यिका श्री सुशीलमती जी
- साहू श्री नेमिचन्द्र : पं० कुन्दनलाल जैन 20
- साधर्मी-विवाह-सम्बन्ध आगमोक्त 22
: डॉ० राजेन्द्रकुमार बंसल
- सभी मंदिरों एवं तीर्थक्षेत्रों के ट्रस्टियों से विनम्र निवेदन : प्रा. सौ. लीलावती जैन 24
- श्री सेवायतन : विमलकुमार सेठी 25
- बिस्किट और दिग्भ्रमित ग्राहक 28
: अनुवादिका : सौ. लीलावती जैन

◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 29

◆ **समाचार** 12, 27, 31, 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

स्थापना के तीन साबुत चावल

एक मन्दिर में मैं पूजा करने के लिए पहुँचा। वहाँ पहले से ही एक पन्द्रह-सोलह साल का लड़का पूजा कर रहा था। वह उस मन्दिर के पुजारी का बेटा था और पुजारी की अनुपस्थिति में प्रायः वही पूजा करने के लिए आया करता था। पढ़ाई-लिखाई में कमजोर होने के कारण उसने पाँचवीं के बाद पढ़ना छोड़ दिया था। वह हथेली में पीताक्षत रखकर उनमें से तीन-तीन साबुत चावल चुनकर ठोने पर चढ़ाते हुए आवाहन, स्थापन, सान्निधीकरण कर रहा था। मैंने जब पूजा प्रारंभ की तब तीन-तीन साबुत चावल न चुनकर बहुत से चावल उठा-उठा कर ठोने पर चढ़ाते हुए आवाहन आदि करने लगा। तब उस पुजारी-पुत्र ने मुझे टोका और कहा कि आपको स्थापना करना भी नहीं आता। इतने सारे टूटे-फूटे चावलों में स्थापना नहीं की जाती। तीन-तीन साबुत चावल चुन-चुन कर ठोने पर स्थापित करना चाहिए। मैंने उससे पूछा-"ऐसा किस शास्त्र में लिखा है?". वह शास्त्र का नाम नहीं बतला सका, पर बोला- सब लोग ऐसा ही करते हैं।

इतने में एक ब्रह्मचारी जी मंदिर में प्रविष्ट हुए। उन्होंने मेरा प्रश्न सुन लिया था। पुजारी-पुत्र से किये गये प्रश्न का उत्तर देते हुए वे बोले-"सब चीजें शास्त्रों में नहीं मिलतीं। परम्परा भी कोई चीज होती है। ठोने पर चढ़ाये गये चावल भगवान् के प्रतीक होते हैं। वे भगवान् की अतदाकार प्रतिमा हैं। भगवान् की अखण्ड प्रतिमा ही पूजनीय होती है, इसलिए चावल भी अखण्ड होने चाहिए। इसी कारण अखण्ड चावल चुन-चुन कर ठोने पर स्थापित किये जाते हैं। और चावलों की तीन संख्या रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) का प्रतीक है, जिसकी साधना से आत्मा भगवान्-पद को प्राप्त होती है।"

मैंने उनसे प्रश्न किया-"जब पंचकल्याणक-विधि द्वारा शास्त्रोक्त-पद्धति से प्रतिष्ठित जिनप्रतिमा सामने वेदी पर विराजमान है, तब चावलों में भगवान् की स्थापना करने की क्या आवश्यकता है? तथा **जयधवला** में कहा गया है-

"**अणंतणाण-दंसण-विरिय-सुहादिदुवारेण एयत्तमावण्णेसु अणंतेसु जिणेसु एयवंदणाए सव्वेसिं पि वंदणुववत्तीदो।**" (जयधवला/कसायपाहुड/भाग १/गाथा १/अनुच्छेद ८७/पृ.१०२)।

अनुवाद-"अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुखादि की अपेक्षा अनन्त जिन एकत्व को प्राप्त होते हैं, अतः एक जिन या जिनालय की वन्दना से सभी जिनों या जिनालयों की वन्दना हो जाती है।"

इसलिए जिन तीर्थंकरों की प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ वेदी पर उपलब्ध नहीं हैं, उनकी पूजा भी उसी प्रतिमा के आश्रय से की जा सकती है, जो वेदी पर प्रतिष्ठित है, भले ही वह किसी भी तीर्थंकर की हो। अतः उनकी पूजा के लिए भी चावल आदि में उनकी स्थापना आवश्यक नहीं है। तब वह क्यों की जाती है?"

ब्रह्मचारी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने उन्हें आगे बतलाया कि इस हुण्डावसर्पिणी काल में आचार्यों ने अतदाकार स्थापना (चावल आदि पदार्थों में भगवान् की स्थापना) का निषेध किया है। इसका सप्रमाण निरूपण वर्तमानयुग के आर्षमार्गी विद्वान् एवं अत्यन्त प्रामाणिक प्रतिष्ठाचार्य पं० गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' के प्रतिष्ठाचार्य पुत्र एवं शिष्य ब्रह्मचारी जयकुमार जी 'निशान्त' ने **पुष्पाञ्जलि** (प्रतिष्ठाचार्य पं० गुलाबचन्द्र 'पुष्प' अभिनन्दन ग्रन्थ) में किया है।

वे लिखते हैं-"पुष्पों (पीताक्षतों) में भगवान् की स्थापना करने का निषेध अवश्य मिलता है-

हुंडावसप्पिणीए विइया ठवणा ण होदि कादव्वा।
लोए कुलिंगमइमोहिए जदो होइ संदेहो॥ ३८५॥

वसुनन्दि-श्रावकचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् हुण्डावसर्पिणी काल में दूसरी असद्भाव (अतदाकार) स्थापना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि कुलिंग-मतियों से मोहित इस लोक में सन्देह हो सकता है।'' ('पुष्पाञ्जलि'/खण्ड २/पृ. ८४)।

उक्त गाथा का अभिप्राय पं० सदासुखदास जी ने निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है-''इस काल में अन्यमतीनि (अन्यमतवालों) की अनेक स्थापना हो गयीं। तातैं इस काल में तदाकार स्थापना की ही मुख्यता है। जो अतदाकार स्थापना की प्रधानता हो जाय, तो चाहे जी ही में या अन्यमतीनि की प्रतिमा में हू, अरहन्त की स्थापना का संकल्प करने लगि जायँ, तो मार्गभ्रष्ट हो जायँ।'' (रत्नकरण्डश्रावकाचार /टीका/कारिका ११९)।

पं० सदासुखदास जी इसके पूर्व लिखते हैं-''बहुरि जो स्थापना के पक्षपाती स्थापना बिना प्रतिमा का पूजन नांही करैं, तो स्तवन-वंदना करने की योग्यता हू प्रतिमा के नाहीं रही। बहुरि जो पीततन्दुलनि की अतदाकार स्थापना ही पूज्य है, तो तिन पक्षपातिनि के धातु-पाषाण का तदाकार प्रतिबिम्ब स्थापन करना निरर्थक है तथा अकृत्रिम चैत्यालय के प्रतिबिम्ब अनादि-निधन स्थापन हैं, तिनमें हू पूज्यपना नाहीं रहा।'' (र.क.श्रा./टीका/कारिका ११९)।

प्रतिष्ठाचार्य पं० गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' तीन-तीन पुष्प गिनकर ठोने पर चढ़ाने को न केवल अनावश्यक मानते हैं, अपितु आहावन-स्थापन में बाधक भी मानते हैं। उनके विचारों को रखते हुए उनके पुत्र एवं शिष्य प्रतिष्ठाचार्य 'निशान्त' जी लिखते हैं-

''आहावन, स्थापन एवं सन्निधीकरण में क्रमशः तीन-तीन पुष्प चढ़ाने का प्रयास करते-करते यह महत्त्वपूर्ण क्रिया पूर्ण करते हैं और अखण्ड पीले चावल सम्हारने-चढ़ाने में ही भगवान् के आवाहन, स्थापन एवं सन्निधीकरण का भाव चूक जाता है। उनसे निकटता प्राप्त करने का अवसर हाथ से निकल जाता है। हम उनके प्रति समर्पित होने का भाव जागृत ही नहीं कर पाते हैं और क्रिया पूर्ण हो जाती है।'' (पुष्पाञ्जलि/खण्ड २/पृष्ठ ८४)।

'निशान्त' जी आगे लिखते हैं-''इसके बाद (आवाहन, स्थापना और सन्निधीकरण के पश्चात्) पूजा करने का संकल्प इस भावना के साथ करें कि हे भगवन्! जो विशुद्धि, कषायों की मन्दता एवं परिणामों की निर्मलता आपके सान्निध्य में हुई है, वह मेरे जीवन में बनी रहे। तत्पश्चात् ठोने पर संकल्पपुष्प क्षेपण करें। यहाँ किसी प्रकार की गिनती के व्यवधान में नहीं उलझना चाहिए, क्योंकि हम भगवान् की पूजा का संकल्प करके संकल्पपुष्प ठोने पर क्षेपण कर रहे हैं, भगवान् को नहीं (भगवान् को स्थापित नहीं कर रहे हैं)।'' (पुष्पाञ्जलि/खण्ड २/पृष्ठ ८६)।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ठोने पर जो पुष्प चढ़ाये जाते हैं, उनमें भगवान् की स्थापना नहीं की जाती, बल्कि वे भगवान् की पूजा का संकल्प किये जाने के प्रतीक होते हैं। अतः गिन-गिन करके तीन एवं साबुत पुष्प (पीताक्षत) चढ़ाने की परम्परा शास्त्रसम्मत नहीं है।

ठोने पर चढ़ाये जानेवाले पुष्पों को भगवान् की प्रतिमा का प्रतीक मान लेने के कारण यह भी देखा जाता है कि विसर्जन के बाद उन पुष्पों (पीताक्षतों) को जल से धोकर जल को प्रतिमा के अभिषेकजल के समान मानते हुए गन्धोदक की तरह मस्तक पर चढ़ाया जाता है। कहीं-कहीं उन पुष्पों को अग्नि में जला दिया जाता है। इन प्रथाओं को भी श्रद्धेय पं० गुलाबचन्द्र जी 'पुष्प' के विचारों को अभिव्यक्ति देनेवाले प्रतिष्ठाचार्य पं० 'निशान्त' जी ने आगमविरुद्ध बतलाया है। वे लिखते हैं-

''पूजा समाप्ति पर पूजनकार्य का विसर्जन (समापन) भी पुष्पों के द्वारा ठोने पर किया जाता है। ---यहाँ भी पुष्पों की गिनती का कोई प्रमाण शास्त्रों में नहीं मिला है, अतः जितने पुष्प हाथ में आ जावें, उन्हें निम्न पद पढ़कर ठोने पर क्षेपण करना चाहिए-

श्रद्धा से आराध्यपद पूजे शक्ति प्रमाण।
पूजा-विसर्जन मैं करूँ, होय सतत कल्याण॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् ठोने के संकल्पपुष्पों को निर्माल्य की थाली में ही डाल देना चाहिए।'' (पुष्पांजलि/खण्ड २/पृष्ठ ८९)।

उपर्युक्त बात पर जोर देते हुए 'निशान्त' जी पुनः लिखते हैं-''संकल्प के पुष्पों को भी निर्माल्य की थाली में क्षेपण कर दें। उन्हें अग्नि में नहीं जलाना चाहिए।'' (पुष्पांजलि/खण्ड २/पृ.९०)।

और चूँकि आवाहन आदि के समय ठोने पर चढ़ाये गये पुष्पों (पीले चावलों) में भगवान् की स्थापना नहीं की जाती, बल्कि वे पूजा करने के संकल्पपुष्प होते हैं, अतः उन्हें धोकर उस जल को अभिषेकजल के समान मस्तक पर चढ़ाना या आँखों में लगाना भी आगमविरुद्ध है। फलस्वरूप विसर्जन के बाद उनका निर्माल्य की थाली में क्षेपणा करना ही आगमसम्मत है।

रतनचन्द्र जैन

मधु (शहद) भी मांसवत् अभक्ष्य ही है

संकलन : पं० अनन्तवल्ले शास्त्री

जैन शास्त्रों में, जैन मात्र को अष्ट मूलगुण धारण करना अति आवश्यक कहा गया है। आ. अमृतचन्द्र ने तो पाँच उदम्बर फल तथा तीन मकार (मद्य, मांस एवं मधु) के त्यागी को ही जैनशास्त्र सुनने का अधिकारी कहा है। परन्तु वर्तमान में कुछ साधर्मी भाई स्वास्थ्य-लाभ के लिये मधु लेने लगे हैं। वे मधु निर्मित दवाओं से भी परहेज नहीं करते। उनका कहना है कि आजकल मधु शुद्ध तरीकों से बनने लगा है। उनका यह कथन बिलकुल भ्रामक है। मधु तो मधुमक्खी की उगाल (वमन) है। इसको किसी भी तरह शुद्ध नहीं कहा जा सकता। इसकी एक बूँद में भी अनंत जीवों का घात होता है। अतः मधु को मांसवत् मानते हुये कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये।

जैन शास्त्रों में तो मधु को अभक्ष्य कहा ही है, परन्तु वैदिकग्रंथों में भी इसे सर्वथा अभक्ष्य कहा है। वैदिक ग्रंथों के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं-

सप्तग्रामेषु दग्धेषु यत्पापं जायते नृणाम्।
तत्पापं जायते तेषां मधुबिन्द्वेककभक्षणात्॥

(महाभारत)

सात गाँव के जलाने में जितना पाप, किसी मनुष्य को होता है, उतना ही पाप, शहद की एक बूँद के खाने से होता है।

जीवाण्डैर्मधु संभूतं म्लेच्छोच्छिष्टं न संशयः।
वर्जनीयं सदा श्रेष्ठैः परलोकाभिकांक्षिभिः॥

(आरण्यक-पुराण)

जो मक्खियाँ अण्डे देती हैं, उनसे ही शहद बनता है। शहद म्लेच्छों की जूठन है, इसमें सन्देह नहीं हैं। इसलिए श्रेष्ठ उत्तम पुरुषों को जो परलोक में सुख चाहते हैं, सदैव शहद छोड़ना चाहिए, अर्थात् कभी न खाना चाहिए।

मद्ये मांसे मधूनि च नवनीते तक्रतो बहिः।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते तद्वर्णास्तत्र जन्तवः॥

(नागपुराण)

मदिरा, मांस शहद और छाछ (मठा) से बाहर निकलते ही नवनीत (लूनिया घी) में उसी वर्ण (रंग) के जीव जन्तु पैदा होते रहते और मरते रहते हैं।

सप्तग्रामेषु यत्पापमग्निना भस्मसात्कृतम्।
तत्पापं जायते जन्तोर्मधुबिन्द्वेकभक्षणात्॥

(मनुस्मृति)

सात गाँवों को आग लगाकर जला देने में जो पाप होता है, उतना पाप शहद की एक बूँद खाने से लग जाता है।

यो ददाति मधु श्राद्धे मोहितो धर्मलिप्सया।
स याति नरकं घोरं खादकैः सह लम्पटैः॥

(महाभारत)

जो मनुष्य धर्म की इच्छा से मोहित होकर श्राद्ध में किसी को मधु (शहद) खिलाता है, तो लंपटी खानेवालों के साथ वह घोर नरक में जाता है।

प्रशिक्षक, श्रमण संस्कृति संस्थान,
सागानेर (जयपुर) राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य : चेतन का भोग

आचार्य श्री विद्यासागर जी

ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्तुतः सही-सही मायने में है- चेतन का भोग। ब्रह्मचर्य का अर्थ भोग से निवृत्ति नहीं है, भोग के साथ एकीकरण और रोग-निवृत्ति है।

जड़ के पीछे पड़ा हुआ व्यक्ति, चेतनद्रव्य होते हुए भी जड़ माना जायेगा। जिस व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य आत्मा नहीं है, वह गुलाम है। बोध की चरम सीमा होने के उपरान्त ही शोध हुआ करता है। उस बोध को ही शोध समझ लें, तो गलत है और आज यही गलती हो रही है। शोध का अर्थ है- अनुभूति होना।

मणिमय मन हर निज अनुभव से झग-झग झग-झग करती है,
तमो-रजो अरु सतो गुणों के गण को क्षण में हरती है।
समय-समय पर समयसारमय चिन्मय निज ध्रुव मणिका को,
नमता मम निर्मम मस्तक तज मृणमय जड़मय मणिका को॥

(निजामृतपान/९)

धर्मप्रेमी बन्धुओ! भगवान् महावीर ने जो सूत्र हमें दिये हैं, उनमें पाँच सूत्र प्रमुख हैं, उनमें से चौथा सूत्र है ब्रह्मचर्य जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

पतित से पावन बनने का यह एक अवसर है। यदि हम इस सूत्र का आलम्बन लेते हैं, तो अपने आपको पवित्र बना सकते हैं। ब्रह्मचर्य की व्याख्या आप लोगों के लिए नई नहीं है, किन्तु पुरानी होते हुए भी उसमें नयेपन के दर्शन अवश्य मिलेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है- अपनी परोन्मुखी उपयोगधारा को स्व की ओर मोड़ना बहिर्दृष्टि अन्तर्दृष्टि बन जाये, बाहरी पथ-अन्तर पथ बन जाये। बहिर्जगत् शून्य हो जाये, अन्तर्जगत् का उद्घाटन हो जाये। यह ध्यान रहे कि ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्तुतः सही-सही मायने में है- 'चेतन का भोग।' ब्रह्मचर्य का अर्थ भोग से निवृत्ति नहीं, भोग के साथ एकीकरण और रोगनिवृत्ति है। जिसको आप लोगों ने भोग समझ रखा है वह है रोग का मूल और ब्रह्मचर्य है जीवन का एक-मात्र स्रोत।

दस साल विगत प्राचीन बात है, एक विदेशी आया था, कह रहा था कि ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना कठिन है, आप इसे न अपनायें, क्योंकि आज के जितने भी वैज्ञानिक हैं, उन सबने यह सिद्ध कर दिया है कि भोग के बिना जीवन नहीं है। मैंने भी उन्हें यही समझाया कि भोग जहाँ पर हैं, वहीं पर जीवन है, यह मैं भी मानता हूँ, लेकिन जिसे आप भोग समझते हैं, उसको मैं भोग नहीं समझता, उसे तो मैं रोग समझता हूँ। आपके भोग का केन्द्र भौतिक सामग्री है और मेरे भोग की सामग्री बनेगी- 'चैतन्यशक्ति'।

विषयवासना मृत्यु का कारण है, मृत्यु दुःख है, दुःख का कूप है और ब्रह्मचर्य जीवन है, आनन्द है, सुख का कूप है। आप सुख चाहते हैं, दुःख से निवृत्ति चाहते हैं, तो चाहे आज अपनायें, चाहे कल अपनायें, कभी भी अपनायें, किन्तु आपको अपनाना यही होगा। रोग की निवृत्ति के लिए औषधपान परमावश्यक होता है, बिना औषधपान के रोग ठीक नहीं हो सकेगा।

भगवान् महावीर ने जो चौथा सूत्र ब्रह्मचर्य का दिया है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है, अपने में पूर्ण है। आज तक जितने भी अनन्त सुख के भोक्ता बने हैं, उन सबने इसका समादर किया है और जीवन में अपनाया है, अपने जीवन में इसको स्थान दिया है, मुख्य सिंहासन पर विराजमान कराया है इसे, भोग-सामग्री को नहीं। ब्रह्मचर्य पूज्य बना, किन्तु भोगसामग्री आज तक पूज्य नहीं बनी। हाँ, ब्रह्मचर्य पूज्य तो आपकी दृष्टि मे भी बना, किन्तु पूजा तो भोग-सामग्री की हो रही है आप लोगों के द्वारा, यह एक दयनीय बात है, दुःख की बात है। साहित्य या अन्य कोई दार्शनिक-साहित्य देखने से विदित होता है कि आत्मा को सही-सही रास्ता तभी मिल सकता है, जब कि हम उस साहित्य का अध्ययन, मनन, चिन्तन व मन्थन करें। हम मात्र उसे सुनते हैं। सुनने से पहले यह सोचना होगा कि हम क्यों सुन रहे हैं उसको? दवाई लेने से पूर्व हम यह निर्णय अवश्य करते हैं कि दवा क्यों ली जाये? एक घण्टे यदि श्रवण करते हैं, तो मैं समझता हूँ कि इसके लिए कम से कम आठ घण्टे चिन्तन-मनन-मन्थन आवश्यक है। मैं कैसे खिलाऊँ आप लोगों को, कैसे पिलाऊँ आप लोगो को, क्योंकि आप लोगों की पाचन की ओर दृष्टि ही नहीं हैं, वह पचेगा नहीं तो दुबारा खिलाना ही बेकार चला जायेगा। उस खाये हुये अन्न को मात्र विष्ठा नहीं बनाना है, उसमें से सार-भूत तत्त्व को अपनी जठराग्नि के माध्यम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पकड़ना है। जठराग्नि ही नहीं तो फिर क्या होगा? संग्रहणी के रोगी को जैसे होता है कि ऊपर से डालते हैं, वह नीचे से वैसे ही निकल जाता है, उसी प्रकार आपकी स्थिति है, पर फिर भी कुछ गुंजाइश है, जठराग्नि कुछ उत्तेजित हो जाये और कुछ हजम हो जाये तो ठीक ही है।

उपयोग की धारा को बाहर से अन्दर की ओर लाना है, तभी ब्रह्मचर्यव्रत पालन हो सकता है, अथवा यूँ कहिये कि उपयोग की धारा जिस पदार्थ में अटक रही है, उस पदार्थ से वह स्थानान्तरित (ट्रांसफर) हो जाये ओर गहराई तक उतरने लग जाये। चाहे अपनी आत्मा में चले जायें, चाहे दूसरे की आत्मा में चले जायें, पर उपयोग को खुराक मिलनी चाहिये **'आत्मतत्त्व'** की, जड़ की नहीं, अपितु चैतन्य की! जहाँ पर बहुत सारी निधियाँ हैं, बहुत सारी सम्पदा बिछी हुई है, वह सम्पदा उस उपभोग की खुराक बन सकती है, सही-सही मायने में वही खुराक है और इसके लिये हमारे आचार्यों ने ब्रह्मचर्यव्रत पर जोर दिया है, क्योंकि उस आत्मा को एक बार तृप्त करना है, जो अनादिकाल से तप्त है।

ब्रह्मचर्य का विरोधी कर्म है 'काम', इस काम के ऊपर विजय प्राप्त करनी है। यह काम और कोई चीज नहीं है, ध्यान रखिये वही उपयोग है जो कि बहिर्वृत्ति को अपनाता जा रहा है, उसी का नाम है काम। वही उपयोग, जो कि भौतिक सामग्री में अटका हुआ है, वही काम है, महाकाम है, यह अग्नि अनादि काल से जला रही है उस आत्मा को। कामाग्नि बुझे और आत्मा शांत हो। उस कामाग्नि को बुझाने में दुनियाँ का कोई पदार्थ समर्थ नहीं है, बल्कि यह ध्यान रहे कि उस कामाग्नि को प्रदीप्त करने के लिए भौतिक सामग्री घासलेट-तेल का काम करती है। आपको यह आग बुझानी है, या उद्दीप्त करनी है? नहीं! नहीं! बुझानी है, ये चारों ओर जो लपटें धधक रही हैं, उनमें से अपने को निकालना है और वहाँ पर पहुँचना है, जहाँ चारों ओर लहरें आ रही हैं शांति की, आनन्द की, सुख की। हम यहाँ एक समय के लिये भी आनन्द की श्वास नहीं ले रहे हैं। ऐसे दीर्घ श्वास तो निकाल रहे हैं, जो कि दुःख के, परिश्रम के प्रतीक हैं, श्वास की गति अवरुद्ध नहीं है, चल रही है, अनाहत चल रही है, किन्तु आनन्द के साथ नहीं, क्योंकि मृत्यु की स्मृति या मृत्यु का वार्तालाप भी सुनते ही हृदय की गति में परिवर्तन आ जाता है और विषय की, वासनाओं की जो लहर चल रही है उसमें आप रात-दिन आपादकण्ठ लीन हैं, उसी का परिणाम दुःख के साथ श्वास है, सुख के साथ नहीं।

इस काम के ऊपर विजय प्राप्त करना है अर्थात् अपने बाहर की ओर जा रहे उपयोग को, जो कि भौतिक सामग्री में अटक रहा है, उसे आत्मा में लगाना है। आत्मा में नहीं लगा पाते, इसीलिये कामाग्नि धधक रही है।

काम पुरुषार्थ का उल्लेख मिलता है भारतीय साहित्य में। कई लोगों की इस काम-पुरुषार्थ के बारे में यह दृष्टि रह सकती है कि काम-पुरुषार्थ का अर्थ भोग है। पर लौकिक नहीं, चैतन्य का। सही-सही मायने में वह काम-पुरुषार्थ से ही मोक्ष-पुरुषार्थ में जा सकता है और जाने को कोई रास्ता ही नहीं, लेकिन काम-पुरुषार्थ का अर्थ बाह्य वातावरण में घूमते रहना ही नहीं लेना चाहिये, काम-पुरुषार्थ का अर्थ ही है गहरे उतरना। काम+पुरुष+अर्थ, इन तीन शब्दों के योग से 'काम-पुरुषार्थ' यह पद निष्पन्न हुआ है। काम-पुरुष-अर्थ, काम अर्थात् भोग, पुरुष अर्थात् प्रयोजन। पुरुष के लिए काम आवश्यक है, पुरुष के दर्शन के लिए नितान्त यह आवश्यक है, इसके बिना हम वहाँ पहुँच नहीं सकते। अर्थात् चैतन्य-भोग के बिना हम आत्मा तक पहुँच नहीं सकते। पहुँचना वहीं पर है, पुरुष तक, पुरुष तक पहुँचने के लिये यह काम (चैतन्यभोग) सहायक तत्त्व है। आप लोग पुरुष तक नहीं पहुँच पाते, पुरुष तक पहुँचनेवाले ही पुरुषार्थी होते हैं और भौतिक सामग्री में अटकने वाला गुलाम होता है। आप तो गुलाम हैं, आप मानो या ना मानो, क्योंकि जिस व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य पुरुष (आत्मा) नहीं है, वह गुलाम तो है ही। जड़ के पीछे पड़ा हुआ व्यक्ति चेतनद्रव्य होते हुये भी जड़ माना जायेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है और जो लक्ष्य से पतित हैं वे भटके हुए माने जायेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।

काम-पुरुषार्थ को धीर-धीरे उन्नत करने के लिये यह भारतीय आचारसंहिता है, जो कि विवाह के ऊपर जोर देती है। कई लोगों की दृष्टि हो सकती है कि विवाह अर्थात् ब्रह्मचर्य को स्खलित करना, किन्तु नहीं, कथञ्चित् ब्रह्मचर्य के और निकट जाना है, यह शार्टकट है, घुमावदार रास्ता है वहाँ पर जाने के लिये क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाह की डोरी में बँधने के बाद वह आत्मा फिर चारों ओर से अपने आप को छुड़ा लेता है और उस डोरी के माध्यम से वह आत्मा तक पहुँचने का प्रयास करता है। कोई किसी बहाव को देश से देशान्तर ले जाना चाहता है, तो उसे रास्ता देना होगा, तभी वह बहाव वहाँ तक पहुँच पायेगा, अन्यथा वह मरुभूमि में समाप्त हो जायेगा। आप लोगों का उपयोग भी आज तक पुरुष तक इसलिये नहीं पहुँच रहा है कि इस तक बहने के लिए कोई रास्ता पास नहीं है और अनन्तों में वह जब वहने लग जाता है, तो वह उपयोग सूख जाता है, क्योंकि छद्मस्थों का उपयोग ही तो है। उस उपयोग के लिये, उस झरने के लिये कुछ रास्ता आवश्यक है, अनन्तों से वह रास्ता बंद हो जाता है, तो वह रास्ता सीधा हो जाता है, इसके लिये सही-सही रास्ता आवश्यक है और वही है काम, वही है असली विवाह, जिसके माध्यम से वह वहाँ तक जा सके। आपने विवाह के बारे में सोचा है कुछ आज तक? जहाँ तक मैं समझता हूँ इस सभा में ऐसा कोई भी नहीं होगा, जो विवाह से परिचित न होगा, लेकिन विवाह के उपरान्त भी वह पुरुष (आत्मा) के पास गया नहीं, इसलिए विवाह केवल एक रूढ़िवाद रह गया है।

विवाह का अर्थ काम-पुरुषार्थ है और यह आवश्यक है, किन्तु इस विवाह के दो रास्ते हैं एक गृहस्थाश्रम सम्बन्धी व दूसरा मुनि-आश्रम सम्बन्धी। आप लोगों ने उचित यही समझा कि गृहस्थाश्रम का विवाह ही अच्छा है। अनन्त भोगसामग्रियों से आपको मुक्ति मिलनी चाहिये थी, किन्तु नहीं मिल पाई। जिस समय विवाह-संस्कार होता है, उस समय उस उपयोगवान् आत्मा को संकल्प दिया जाता है, पंडित जी के माध्यम से कि अब तुम्हारे लिये संसार में जो स्त्रियाँ हैं, वे सब माँ, बहिन और पुत्री के समान हैं। आपके लिए एकमात्र रास्ता है, इसके मध्यम से चैतन्य तक पहुँचिये आप।

प्रयोगशाला में एक विज्ञान का विद्यार्थी जाता है, प्रयोग करना प्रारम्भ करता है, जिस पर प्रयोग किया गया है, उसकी दृष्टि उसी में गड़ जाती है और वह अपने आपको भूल जाता है, पास-पड़ौस को तो भूल ही जाता है, स्वयं को भी भूल जाता है। एकमात्र उपयोग काम करता है, तब वह विज्ञान का विद्यार्थी सफलता प्राप्त करता है, प्रयोग सिद्ध कर लेता है, प्रैक्टीकल के माध्यम से वह विश्वास को दृढ़ बना लेता है, ऐसी ही प्रयोगशाला है विवाह। विवाह का अर्थ है दो विज्ञान के विद्यार्थी पति और पत्नी। पत्नी के लिये प्रयोगशाला है पति और पति के लिये प्रयोगशाला है पत्नी, पत्नी का शरीर नहीं आत्मा! यह ध्यान रहे कि वे ऊपर से स्त्री व पुरुष हैं, पर अन्दर से दोनों पुरुष हैं (अर्थात् आत्मा हैं) स्त्रियाँ भी पुरुष के पास जा रही हैं और पुरुष भी पुरुष के पास जा रहे हैं। दोनों पुरुष हैं, पर ऊपर स्त्री पुरुष के वेद के भेद हैं, किन्तु वेद के भेद ही वहाँ पर अभेद के रूप में परिणत हो रहे हैं। अभेद की यात्रा प्रारम्भ हो रही है, यह है विवाह की पृष्ठ-भूमि! अभी तक आप लोगों ने विवाह तो किया होगा, पर पति सोचता है पत्नी मेरे लिये भोगसामग्री है, बस इतना ही समझकर ग्रन्थि बँध जाती है, विवाह हो जाता है, बंधन में बँध जाते हैं, इसलिये आनन्द नहीं आता। इसीलिये जैसे-जैसे भौतिक कायायें सूखने लगती हैं, बेल सूखने लगती है, समाप्तप्राय होने लग जाती है, तो दोनों एक दूसरे के लिये घृणा के पात्र बन जाते हैं। पति से पत्नी की नहीं बनती और पत्नी से पति की नहीं बनती और बस बीच में दीवार खिंच जाती है। यह तो लोकनाता है, जिसे निभाते चले जाते हैं, निभना नहीं निभाना पड़ता है, क्योंकि अग्नि के समक्ष संकल्प किया था।

दो बैल थे, वे एक गाड़ी में जोत दिये गये। एक किसान गाड़ी को हाँकने लगा। एक बैल पूर्व की ओर जाता है, तो एक बैल पश्चिम की ओर, बस परेशानी हो जाती है। बैलों को तो पसीना आता ही है, किसान को भी पसीना आना प्रारम्भ हो जाता, वह सोचता है कि अब गाड़ी आगे नहीं चल पायेगी। यही स्थिति गृहस्थाश्रम की है। आप लोगों का रथ प्रायः ऐसा ही हो जाता है। पत्नी एक तरफ खींच रही है, तो पति दूसरी ओर, अन्दर का आत्मा सोच रहा है कि यह क्या मामला हो रहा है?

आप लोग आदर्श विवाह तो करना चाहते हैं दहेज से परहेज करने के लिए, किन्तु आदर्श विवाह के माध्यम से अपने जीवन को आदर्श नहीं बना पाये। इसलिए आपका वह आदर्श विवाह एकमात्र आर्थिक विकास के लिए कारण बन सकता है, किन्तु पारमार्थिक विकास के लिए नहीं बनता।

आदर्श विवाह था राम और सीता का। दोनों ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किस प्रकार उस विवाह के माध्यम से, डोरी के माध्यम से, सम्बन्ध के माध्यम से, अपने जीवन को सफलीभूत बनाया। आपको याद रहे कि वह सीता भोगसामग्री थी राम के लिए, राम भोगसामग्री थे, सीता के लिए। पर उनकी दृष्टि में अनन्त जो सामग्री बिछी थी चारों ओर वह भोगसामग्री नहीं थी, उस प्रयोगशाला में जो कोई भी पदार्थ इधर-उधर बिखरा हुआ है, विद्यार्थी को उनका कोई ध्यान नहीं रहता, उसी प्रकार उन्हें बाहर की वस्तुओं से कोई मतलब नहीं था। उनकी यात्रा अनाहत चल रही थी। इसी बीच हजारों स्त्रियों के साथ जानेवाला रावण, एक भूमिगोचरी सीता के ऊपर दृष्टिपात करता है, किन्तु सीता की आत्मा के ऊपर दृष्टिपात नहीं करता, सीता की आत्मा तक उसकी दृष्टि नहीं पहुँचती, अपितु गोरी-गोरी उस काया की माया में डूब जाता है और अपने जीवन को भी वह धो देता है। यह ध्यान रहे कि उसकी दृष्टि सीता की आत्मा तक पहुँच जाती, तो उसे अवश्य मार्ग मिल जाता, उसका जीवन सुधर जाता। सीता की चर्या के माध्यम से राम का जीवन सुधरा और राम के जीवन के माध्यम से, सीता का जीवन सुधरा। वे एक दूसरे के पूरक थे। जैसे कि राह में दो बुड्ढे परस्पर एक-दूसरे के सहयोग से चलते जाते हैं, गिरते नहीं हैं। इस प्रकार वे दोनों भी चले जा रहे थे। इधर-उधर उपयोग न भटके इसलिए दृढ़ निश्चय करके एक विषय में दो विद्यार्थी जुटे हुए थे, राम और सीता। ज्यों ही रावण बीच में आया, तो राम सोचते हैं कि इसके लिये यहाँ पर स्थान नहीं है, हमारे जीवन के बीच में कोई नहीं आ सकता। कोई आता है, तो वह व्यवधान सिद्ध होगा और उस व्यवधान को हम सर्वप्रथम दूर करेंगे। जब तक यह रहेगा, तब तक हम दोनों का जीवन एक साथ चल नहीं सकता, फिर भी रावण आता है, तो राम को कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ता है। रावण को मारने का इरादा नहीं किया राम ने, मात्र अपने प्रशस्त-मार्ग में आनेवाले व्यवधान को हटाने का प्रयास किया और सीता के पास जाने का प्रयास किया।

सीता ने जिस संकल्प के साथ इस ओर कदम बढ़ाया था, उसकी रक्षा करना, समर्थन करना, राम का परम धर्म था और राम का समर्थन करना सीता का परम धर्म था। उन दोनों ने धर्म का अनुपालन किया। भोग का (सांसारिकता का) अनुपालन नहीं, भोग में चैतन्य का सहारा लिया, उसके बिना वे चल नहीं सकते थे, चलना अनिवार्य था, मंजिल तक पहुँचना था, इसलिए साथी को अपनाया था, ध्यान रहे कि विवाह पद्धति का अर्थ मोक्ष-मार्ग में साथी बनाना है। विवाह का अर्थ एकान्त से संसारमार्ग की सामग्री नहीं है।

विवाह तो पाश्चात्य शहरों में भी होते हैं, पर वहाँ के विवाह, विवाह नहीं कहलाते। वहाँ पर पहले राग होता है, बाद में बन्धन होता है, यहाँ पहले बन्धन होता है, पीछे राग होता है, और वह राग नहीं आत्मानुराग प्रारम्भ हो जाता है। पहले संकल्प दिये जाते हैं, फिर बाद में उनके साथ सम्बन्ध होता है, अन्यथा नहीं। इसका अर्थ क्या? इसका अर्थ बहुत गूढ़ है। जब तक उनका (राम व सीता का) सांसारिक गृहस्थधर्म चलता रहा, तब तक उन्होंने एक-दूसरे के पूरक होने के नाते अपने जीवन को चलाया। अन्त में सीता कहती है कि हमने एम. ए. तो कर लिया, अब पी.एच.डी. करना है, स्वयं का शोध करना है। शोध के लिए पर्याप्त बोध भी मिल चुका है। बोध की चरम सीमा हो चुकी है। बोध की चरम सीमा होने के उपरान्त ही, शोध हुआ करता है। एम. ए. का विद्याध्ययन शोध के लिए आवश्यक है, उसके बिना शोध नहीं हो सकता, उस बोध को ही शोध समझ लें, तो गलत हो जायेगा, आज यही हो रहा है। शोध करना तो दूर रह जाता है, मात्र इतना ही पर्याप्त समझ लेते हैं कि सोलहवीं कक्षा पास कर ली, तो हमने बहुत कुछ कर लिया, पर वस्तुतः किया कुछ नहीं। शोध अब प्रारम्भ होगा, अपनी तरफ से अनुभूति अब प्रारम्भ होगी। अभी तक अनुभूति नहीं, मात्र गाइडैन्स मिली है। एम. ए. का अर्थ है दूसरे को गाइडैन्स के माध्यम से अपने आप के बोध को समीचीन बनाना और फिर इसके उपरान्त अनुभूति का अर्थ- अब किसी प्रकार की टेक्स्ट बुक नहीं है, कोई बन्धन नहीं है, अब शोध करना है।

सीता के पास अब इतनी शक्ति आ चुकी थी कि वह राम से कहती है- अब मुझमें इतनी शक्ति आ चुकी है कि आपकी आवश्यकता नहीं है। अब तीन लोक में जो कोई भी पदार्थ बिखरे हुये हैं, उनमें से किसी भी पदार्थ को निकाल कर आत्मा को चुन सकती हूँ और बोध का विषय बना सकती हूँ, जैसे कि सामान्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोध छात्र पुस्तकालय में से अपने विषय प्रयोजन की पुस्तक चुन लेता है। उसके माध्यम से मैं अपनी यात्रा बढ़ा सकती हूँ। अब राम, तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। अब स्वावलम्बी जीवन आ गया। अब विवाह की डोरी को तोड़ना चाहती हूँ, ध्यान रखना पहले नहीं तोड़ी। वह कहती है अब मैं इस पाठशाला में नहीं रहूँगी। ऊपर उठूँगी और पंचमुष्टि केशलुंचन कर लेती है, राम अभी शोध छात्र नहीं थे, अतः वे प्रणिपात हो गये उसके चरणों में। जिसने विषय चुन लिया, शोध छात्र बन गया, ऊपर उठ गया, वह अब विद्यार्थी नहीं। छात्र तो इसलिए मान लिया जाता है कि अभी भी कुछ कर रहा है। अब वह स्नातक से भी ऊपर उठ चुका है, अब वह विद्यार्थी नहीं है, भले ही उसे विद्यार्थी कहो, पर वह अब मास्टर बन गया है। राम ने अभी इतना साहस नहीं किया था, इसलिये उन्होंने सीता के चरणों में प्रणिपात किया और अपने आप को कमजोर महसूस करने लगे कि देखो यह एक अबला होकर भी शोधछात्रा बन गई। अब यह विश्व में बिखरी चैतन्य-सत्ताओं के बारे में विचार करेगी, अध्ययन करेगी और उनके पास पहुँचने का प्रयास करेगी। अब सीता को राम की आवश्यकता नहीं है।

राम-राम, श्याम-श्याम, रटन्त से विश्राम।
रहे न काम से काम, तब मिले आतम राम॥

सीता की दृष्टि में अब राम, राम न रहे, अब दृष्टि में था आतमराम। प्रत्येक काया में छिपे हुये आतमराम को वह टटोलेगी, उन सब के साथ सम्बन्ध रखेगी, विश्व के साथ एक प्रकार से भोगयात्रा प्रारम्भ हो गई, लेकिन ध्यान रहे अब आतमराम के साथ भोग है, राम के साथ नहीं। राम उस काया का नाम था, आतमराम काया का नाम नहीं है। उस अन्तर्यामी चैतन्य सत्ता में न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक है, न बुड्ढा है, न बालक है, न जवान है, उसमें देव नहीं, नारकी नहीं, तिर्यंच नहीं, पशु नहीं, वह केवल आतमराम है। चारों ओर आतमराम। वह सीता अकेली चल पड़ी। सीता की आत्मा कितने जबरदस्त बल को प्राप्त कर चुकी! अब वह किसी की परवाह नहीं करती। अब वह अबला नहीं है, सबला है। उसके चरणों में अब राम प्रणिपात कर रहे हैं, इस समय वे निर्बल थे, और सीता सबला थी।

वह ऊपर उठ चुकी थी। राम उससे कहते हैं कि ठहरो, मैं भी आ जाऊँ? सीता पूछती है, कहाँ आ जाऊँ? तुम्हारे साथ! किसलिए? दोनों घर में रहें, बाद में मार्ग चुन लेंगे। सीता कहती है- अरे! अब घर में रहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है, मैं जब विद्यार्थी थी, तब तक ठीक था, अब मैं विद्यार्थी से ऊपर उठ चुकी हूँ। अब आपकी कोई आवश्यकता नहीं, आपको धन्यवाद देती हूँ कि आपने एम.ए. तक मेरा साथ नहीं छोड़ा, धन्यवाद बहुत धन्यवाद। पर अब पैरों मे बहुत बल आ चुका है, आँखों को दृष्टि मिल चुकी है, अब मैं अनाहत जा सकती हूँ, अब कोई परवाह नहीं, राह मिल चुकी है।

राम ने अग्नि परीक्षा के बाद कहा था कि चलो प्रिये, घर चलो। वह अग्नि परीक्षा ही सीता के लिए, मैं समझता हूँ, स्नातक परीक्षा थी, वह उसमें सफल हो जाती है। वह राम से आगे निकल गई। राम ने बहुत कहा अभी मत जाओ। सीता कहती है- तुम पीछे आ, जाओ, पर मैं अब नहीं रुक सकती। साथ रहने पर बिखरे हुये विषय का संग्रह नहीं कर सकूँगी। इसलिए आप अपना विषय अपनायें और मैं अपना विषय अपनाती हूँ। अब आप मेरी दृष्टि में राम नहीं हैं, आतमराम हैं।

इस प्रकार लिंग का विच्छेद करके, वेद का विच्छेद करके वह अभेद यात्रा में चली गई, यह घड़ी उसकी आत्मा की अपनी घड़ी थी। उसी दिन उसके लिए मोक्ष-पुरुषार्थ की भूमिका बन गई। यह कामपुरुषार्थ का ही सुफल था कि वह मोक्ष-पुरुषार्थ में लीन थी अब वह मोक्षपुरुषार्थी थी, कामपुरुषार्थी नहीं।

राम ने सोचा कि क्या मैं कमजोर हूँ? उन्हें अबला से शिक्षण मिल गया। वे भी शोधछात्र बन गये। सीता को मालूम न था कि ये मुझसे भी आगे बढ़ जायेंगे। स्पर्धा ऐसी बातों में करनी चाहिए। आप लोग कमाने में, भौतिक सामग्री जुटाने में स्पर्धा करते हैं, ये आविष्कार हुआ, ये परिष्कार हुआ, लेकिन अन्दर क्या आविष्कार हुआ, यह तो देखो, अपने आपके ऊपर डॉक्टरेट की उपाधि तो प्राप्त कर लो। स्वयं पर नियन्त्रण नहीं है, स्वयं के बारे में गहरा ज्ञान है, तो मैं समझता हूँ कि भौतिक ज्ञान भी आपका सीमित है। मात्र दूसरे ने जो कुछ कहा उसी को नोट कर लिया, पढ़ लिया। अन्दर ज्ञान के स्रोत हैं- वहाँ पर देखो, चिन्तन के माध्यम से देखो कितने-कितने खजाने भरे हुये हैं, वहाँ पर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घुसते चले जाओ, अनन्त सम्पदा भरी पड़ी है, वह अनन्तकालीन सम्पदा लुप्त है, गुप्त है, आप सोये हुये हैं, अतः वह सम्पदा नजर नहीं आ रही है।

जब राम को सीता से प्रेरणा मिल जाती है, तब राम ने निश्चय कर लिया कि मुझे भी अब कॉलेज की कोई आवश्यकता नहीं, अब तो मैं भी ऊपर उठ जाऊँगी। आप लोगों का जीवन कॉलेज में ही व्यतीत हो जाता है। शिक्षण जब लेते हो, तब भी कॉलेज की आवश्यकता है और उसके उपरान्त अर्थ-प्रलोभन आपके ऊपर ऐसा हावी हो जाता है कि पुनः उस कॉलेज में आप को नौकरी कर लेना पड़ती है। पहले विद्यार्थी के रूप में, अब विद्यार्थियों को पढ़ाने के रूप में, स्वयं के लिये कुछ नहीं है। उसी कॉलेज में जन्म और उसी कॉलेज में अन्त, यही मुश्किल है। डाक्टरेट कर ही नहीं पाते, एक बार स्वयं पर, दूसरों पर नहीं, अपने आप पर अध्ययन करो।

राम ने संकल्प ले लिया और दिगम्बरदीक्षा ले ली। अब राम की दृष्टि में भी कोई सीता नहीं रही, न कोई लक्ष्मण रहा। वे भी आतमराम में लीन हो गये। यह 'काम' (आत्मा के लिये चैतन्य का भोग, काम पुरुषार्थ) की ही देन थी। मोक्ष-पुरुषार्थ में भर्ती कराने का साहस कामपुरुषार्थ की ही देन है। वह कामपुरुषार्थ भारतीय परम्परा की अनुरूप हो, तो मोक्ष-पुरुषार्थ की ओर दृष्टि जा सकती है, आपके कदम उस ओर उठ सकते हैं। जब दृष्टि नहीं जायेगी, तो कदम उठ नहीं पायेंगे। विवाह तो आप कर लेते हैं, किन्तु आपको अभी वह राह नहीं मिल पाई। भारत में पहले बन्धन है, फिर राग है, वह राम-वीतराग बनने के लिए है। इसमें एक ही साथ सम्बन्ध रहा है। अनन्त के साथ नहीं, अनन्त के साथ तो बाद में, सर्वज्ञ होने पर। पहले सीमित विषय, फिर अनन्त। जो प्रारम्भ से ही अनन्त में अधिक उलझता है, उसका किसी विषय पर अधिकार नहीं होता।

आज पाश्चात्य समाज की स्थिति है कि एक व्यक्ति दूसरे पर विश्वास नहीं करता, प्रेम नहीं करता, वात्सल्य नहीं करता। एक-दूसरे की सुरक्षा के भाव वहाँ पर नहीं हैं। भौतिक सम्पदा में सुरक्षा नहीं हुआ करती, आत्मिक सम्पदा में ही सुरक्षा हुआ करती है।

विवाह के पश्चात् यहाँ आपका (भारतीय परम्परानुसार) विकास प्रारम्भ होता है और वहाँ (पाश्चात्य देशों में) विनाश। वह धारा इधर भी बहकर आ रही है।

राम और सीता ने विवाह को, काम-पुरुषार्थ को अपनाया, उसे निभाया, उसी का फल मानता हूँ कि राम तो मुक्ति का वरण कर चुके और स्वयं आनन्द का अनुभव कर रहे हैं, और सीता सोलहवें स्वर्ग में विराजमान है। वह भी गणधर परमेष्ठी बनेगी और मुक्तिगामी होगी। हम इस कथा को सुनते मात्र हैं, इसकी गहराई तक नहीं पहुँचते।

कामपुरुषार्थ का अर्थ है- काम सम्बन्ध, अर्थात् पुरुष के लिए भोगचैतन्य का। आप पुरुष तक नहीं पहुँचते, शरीर में ही अटक जाते हैं, रंग में दंग रह जाते हैं, बहिरंग में ही रह जाते हैं, अन्तरंग में नहीं उतरते। आत्मा के साथ भोग करो, आत्मा के साथ मिलन करो, आत्मा के साथ सम्बन्ध करो।

अभी कुछ देर पूर्व यहाँ मेरा परिचय दिया, पर वह मेरा परिचय कहाँ था, आत्मा का कहाँ था? मेरा परिचय देने वाला वही हो सकता है, जो मेरे अन्दर आ जाये, जहाँ मैं बैठा हूँ। सिंहासन पर नहीं, सिंहासन पर तो शरीर बैठा है। आपकी दृष्टि वहीं तक जा सकती है, आपकी पहुँच भौतिक काया तक ही जा पाती है। मेरा सही परिचय है- मैं चैतन्यपुंज हूँ, जो इस भौतिक शरीर में बैठा हुआ है। यह ऊपर जो अज्ञान दशा में अर्जित मल चिपक गया है उसको हटाने में रत हूँ, उद्यत हूँ, मैं चाहता हूँ कि मेरे ऊपर का कवच निकल जाये और साक्षात्कार हो जाये इस आत्मा का, परमात्मा का, अन्तरात्मा का। आपके पास कैमरे हैं फोटो उतारने के, मेरे पास एक्सरे हैं। कैमरे के माध्यम से ऊपर की शक्ल ही आयेगी और एक्सरे के माध्यम से अन्तरंग आयेगा, क्योंकि अन्तरंग को पकड़ने की शक्ति एक्सरे में है और बाह्यरूप को पकड़ने की शक्ति कैमरे में है। आप कैमरे के शौकीन हैं, मैं एक्सरे का शौकीन हूँ। अपनी-अपनी अभिरुचि है। एक बार एक्सरे के शौकीन बनकर देखो, एक बार बन जाओगे तो लक्ष्य तक पहुँच जाओगे। मैं चाहता हूँ कि हम उस यन्त्र को पहचानें, ग्रहण करें, उसके माध्यम से अन्दर जो तेजोमय आत्मा अनादिकाल से बैठी है, विद्यमान है, वह पकड़ में आ जाये, लेकिन ध्यान रखना एक्सरे की कीमत बहुत होती है। प्रत्येक व्यक्ति गले में कैमरा लटका सकता है, पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्सरे यन्त्र नहीं। एक बार एक्सरे से आत्मा को पकड़ लें, बस। कैमरे से उतारा गया ढाँचा बदल सकता है, शरीर बदल सकते हैं, पर एक्सरे से उतारी गई आत्मा नहीं बदल सकती। अनन्तकाल व्यतीत हो चुका है व्यर्थ में, हम लक्ष्य पर नहीं पहुँचे।

दिपे चाम चादर मणी हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में और नहीं घिनगेह॥

(बारह भावना/६)

आपके पास तो घिनावने पदार्थ पकड़ने की मशीन है, किन्तु सुगन्धित, जहाँ किसी प्रकार के घिनावने पदार्थ नहीं हैं, वह एक आत्मा है, वह हमें मिल सकती है, जब हमारी दृष्टि, अन्तर्दृष्टि हो जाये।

जब राम ने मुनिदीक्षा धारण कर ली, घोर तपस्या में लीन हो गये, तो इतनी अन्तर्दृष्टि बन चुकी थी कि बाहर क्या हो रहा है? उन्हें पता ही नहीं। प्रतीन्द्र के रूप में सीता का जीव सोचता है कि अरे! इन्होंने तो सीधा रास्ता अपना लिया, मुझे तो स्टेशन पर रुकना पड़ा। ये लक्ष्य तक पहुँचनेवाले हैं। सीता ने सोचा कि राम डिगते हैं कि नहीं, उसने डिगाने का प्रयास किया पर राम डिगे नहीं। उन्हें फिर बाहरी पदार्थों ने प्रभावित नहीं किया। इसी को कहते हैं ब्रह्मचर्य। अपनी आत्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य है।

इस ब्रह्मचर्य के सामने विश्व का मस्तक नत-मस्तक हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। उस दिव्य-तत्त्व के सामने सांसारिक कोई चीज मौलिकता नहीं रखती, उनका कोई मूल्य नहीं है। इसलिये मैं उस दिव्यब्रह्मचर्य धर्म की वन्दना करते हुए आप लोगों को यही कहूँगा कि आप लोग कैमरे को छोड़ दें और एक्सरे के पीछे लग जायें, अन्दर घुस जायें, कोई परवाह नहीं कि बाहर क्या हो रहा है? बाहर कुछ भी नहीं होगा। अन्दर ही जो होगा, उसे देखोगे तो बाहर कुछ घट भी जाये, तो उसका प्रभाव अपने ऊपर नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह सुरक्षित आत्मद्रव्य है। बाहर कुछ भी कर लो, आत्मा इस प्रकार का टैंक है कि जिसके ऊपर किसी भी प्रकार का गोला-बारूद असर नहीं करता, वह अन्दर का व्यक्ति सुरक्षित रहता है, किन्तु वह बाहर आ जाये तो स्थिति बिगड़ जाती है। बाहर लू चलती है, पर अन्दर शान्ति की लहरें चल रही हैं। उस अन्तरात्मा में लीन होनेवाले व्यक्ति के चरणों में कौन नहीं नत-मस्तक होगा? अवश्य नमस्कार करेंगे, लेकिन हम नमस्कार करके भी अपना उद्देश्य यह नहीं बना पाते कि हमें भी उस शान्त लहर का अनुभव करना है, वह शान्ति की अनुभूति अनन्तकाल में नहीं हुई है, लेकिन ऐसी बात भी नहीं है कि हो भी नहीं सकती, हो सकती है, लेकिन दृष्टि अन्दर जाये तो।

कामपुरुषार्थ को आप मात्र भोग मत मानो, वह भोगपुरुषों के लिए है, आत्मा के लिए है। वास्तविक भोग वही है, जो चैतन्य के साथ हुआ करता है। जब सर्वज्ञ बन जाते हैं, उस समय अनन्तचैतन्य के साथ मेल हो जाता है। उस मेल में कितनी अनुभूति, कितनी शान्ति मिलती होगी, यह वे ही कह सकते हैं, हम नहीं कह सकते। मात्र कुछ बिन्दु हमें उसके मिल जाते हैं (ध्यान के समय) तो हम आनन्द-विभोर हो जाते हैं उस अनन्त-सिंधु में गोता मारनेवाले के सुख की कोई सीमा नहीं है, असीम है उसका सुख, असीम है वह शान्ति, असीम है वह आनन्द। वही आनन्द अपने को मिले ऐसा पुरुषार्थ करना है।

मुनिराज भी निर्भोगी नहीं होते, वे भी भोगी होते हैं, किन्तु वे चैतन्य के भोक्ता बनते हैं, पाँच इन्द्रियों के लिये यथोचित विषय देते हैं, किंतु रागपूर्वक नहीं, भोग की दृष्टि से नहीं, अपितु योग की साधना की दृष्टि से-

ले तप बढ़ावन हेतु नहीं, तन पोसतैं तज रसन को।

(छहढाला-छठी ढाल)

विषय और भोग (काम) मात्र संपोषण की दृष्टि से माने गये हैं, किन्तु जब वह दृष्टि हट जाती है, तो वे ही पदार्थ हमें मोक्ष-पुरुषार्थ की साधना करने में कार्यकारी हो जाते हैं। मुनिराज के द्वारा इन्द्रियविषय (निद्रा भोजन आदि) ग्रहण किये जाते हैं, पर वे विषय-पोषण की दृष्टि से नहीं होते, मात्र शोषण नहीं रहता। पोषण व शोषण के बीच की धारा योगदृष्टि उनके पास रहती है, जिसमें शरीर के साथ सम्बन्ध छूटता भी नहीं है, टूटता भी नहीं है और मात्र शरीर के साथ भी सम्बन्ध नहीं रहता, किन्तु चैतन्य के साथ सम्बन्ध रहता है। मुनिराज का शरीर के साथ संबंध चैतन्य-खुराक के साथ रहता है।

सवारी तभी आगे बढ़ेगी, जब उसमें पेट्रोल डालेंगे। आप लोग भी इस काम-पुरुषार्थ के माध्यम से, मोक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषार्थ की ओर अनन्त सुख की उपलब्धि करें, यही कामना है।

मुझे जो यह इस प्रकार ज्ञान की, साधना की थोड़ी सी ज्योति मिली है, वह पूर्वाचार्यों से (पूज्य गुरुवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज से) मिली है। हम पूर्वाचार्यों के उपकार को भुला नहीं सकते। वैषयिक दृष्टि को भूलकर विवेकदृष्टि से इनके उपकारों को देखो, इनके द्वारा बताये कर्त्तव्यों की ओर अपना दृष्टिपात करो और देखो, कि इनके संदेश किसलिए हैं? स्व-आत्म पुरुषार्थ के साथ उनके उपदेश आप लोगों के उत्थान के लिए हैं किन्तु उनका अपनी आत्मा में रमण स्वयं के कल्याण के लिये था। कोई भी व्यक्ति जब स्वहित चाहता है और उसका हित हो जाता है, तो उसकी दृष्टि अवश्य दूसरे की ओर जाती है, इसमे कोई सन्देह नहीं। उन्होंने सोचा कि ये भी मेरे जैसे दुःखी हैं, इनको भी रास्ता मिल जाये। आचार्यों को जब ऐसा विकल्प हुआ, तो उन्होंने उसके वशीभूत होकर प्राणियों के कल्याण के लिये मार्ग सुझाया। महान् अध्यात्मसाहित्य का सृजन किया और आज हमारे जैसे भौतिक चकाचौंध के युग में रहते हुये भी कुछ कदम उस ओर उठ रहे हैं, तो मैं समझता हूँ कि बाह्य निमित्त से वे आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज आदि जो पूर्वाचार्य हुये, उनका ऋण हम पर है और उनके प्रति हमारा यही परम कर्त्तव्य है कि उस दिशा के माध्यम से अपनी दिशा बदलें और दशा बदलें, अपने जीवन में उन्नति का मार्ग प्राप्त करें, सुख का भाजन बनें और इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखें, ताकि आगे आनेवाले प्राणियों के लिए भी यह उपलब्ध हो सके। आचार्य कुन्दकुन्द की स्मृति के साथ मैं आज का वक्तव्य समाप्त करता हूँ-

कुन्दकुन्द को नित नमूँ, हृदय कुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में, जीवन मम घुल जाय॥

(दोहा-दोहन)

'चरण आचरण की ओर' से साभार

पार्श्वनाथ विद्यापीठ निबन्ध प्रतियोगिता 2007-08

उद्देश्य- जैन समाज लम्बे समय से यह अनुभव कर रहा है कि लोगों को जैनधर्म, दर्शन एवं संस्कृति की यथार्थ जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि जैनदर्शन में विश्वदर्शन बनने की क्षमता है। इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए 'पार्श्वनाथ विद्यापीठ' नवयुवकों के बौद्धिक विकास एवं जैनधर्म, दर्शन के प्रति उनकी जागरूकता को बनाये रखने के लिए प्रतिवर्ष एक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन कर रहा है, जिससे कि लोगों में पठन-पाठन एवं शोध के प्रति रुचि पैदा हो एवं साथ ही विचारों का आदान-प्रदान हो सके। इस कड़ी में यह पाँचवीं निबन्ध प्रतियोगिता है।

विषय : 'अनेकान्तवाद : सिद्धान्त और व्यवहार'

निबन्ध के साथ प्रतिभागी की पासपोर्ट साइज फोटो, पूरे पते सहित अपनी शैक्षिक योग्यता का विवरण एवं हाई स्कूल सर्टिफिकेट की फोटो प्रति (Xerox copy) भेजना अनिवार्य है।

निबन्ध भेजने का पता

संयोजक- निबन्ध प्रतियोगिता-2007-08, पार्श्वनाथ विद्यापीठ आई. टी. आई. रोड, करौंदी, वाराणसी- 221005 (उ.प्र.)

आयुवर्ग के आधार पर निबन्ध के लिए निर्धारित पृष्ठ संख्या-

18 वर्ष तक- डबल स्पेस में फुलस्केप साइज में टंकित (typed) पूरे चार पेज।

18 वर्ष के ऊपर- डबल स्पेस में फुलस्केप साइज में टंकित (typed) पूरे आठ पेज।

पुरस्कार- निर्णायक मण्डल द्वारा चयनित प्रतियोगी को निम्नानुसार पुरस्कार देय होगा-

18 वर्ष तक के प्रतियोगी के लिये- प्रथम पुरस्कार-2500 रु., द्वितीय पुरस्कार-1500 रु., तृतीय पुरस्कार-1000 रु.

18 वर्ष के ऊपर के प्रतियोगी के लिये-प्रथम पुरस्कार-2500 रु., द्वितीय पुरस्कार-1500 रु., तृतीय पुरस्कार-1000 रु.

प्रतियोगिता की भाषा- निबन्ध हिन्दी या अँग्रेजी दोनों भाषाओं में हो सकते हैं।

अन्तिम तिथि- इस निबन्ध प्रतियोगिता के लिये आलेख 30 दिसम्बर, 2008 तक भेजे जा सकते हैं।

डॉ. श्री प्रकाश पाण्डेय
निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी-5 (उ. प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्ममाता चिरौंजाबाई जी का समाधिमरण

क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

बाईजी का स्वास्थ्य प्रतिदिन शिथिल होने लगा। मैंने बाईजी से आग्रह किया कि आपकी अन्तर्व्यवस्था जानने के लिये डॉक्टर से आपका फोटो (एक्सरा) उतरवा लिया जावे। बाईजी ने स्वीकार नहीं किया। एक दिन मैं और वर्णी मोतीलालजी बैठे थे। बाईजी ने कहा 'भैया! मैं शिखरजी में प्रतिज्ञा कर आई हूँ कि कोई भी सचित पदार्थ नहीं खाऊँगी। फल आदि चाहे सचित्त हों चाहे अचित्त हों, नहीं खाऊँगी। दवाई में कोई रस नहीं खाऊँगी। गेहूँ, दलिया, घी और नमक को छोड़कर कुछ न खाऊँगी। दवाई में अलसी, अजवाइन और हर्र छोड़कर अन्य कुछ न खाऊँगी।'

उसी समय उन्होंने शरीर पर जो आभूषण थे, उतार दिये, बाल कटवा दिये, एक बार भोजन और एक बार पानी पीने का नियम कर लिया। प्रातःकाल मन्दिर जाना, वहाँ से आकर शास्त्र स्वाध्याय करना, पश्चात् दस बजे एक छटाक दलिया का भोजन करना, शाम को चार बजे पानी पीना और दिन भर स्वाध्याय करना, यही उनका कार्य था। यदि कोई अन्य कथा करता, तो वे उसे स्पष्ट आदेश देतीं कि बाहर चले जाओ। पन्द्रह दिन बाद, जब मंदिर जाने की शक्ति न रही, तब हमने एक ठेला बनवा लिया, उसी में उनको मंदिर ले जाते थे। पन्द्रह दिन बाद वह भी छूट गया, कहने लगीं कि हमें जाने में कष्ट होता है, अतः यहीं से पूजा कर लिया करेंगे। हम प्रातःकाल मंदिर से अष्टद्रव्य लाते थे और बाईजी एक चौकी पर बैठे-बैठे पूजन पाठ करती थीं। मैं ९ बजे दलिया बनाता था और बाईजी दस बजे भोजन करती थीं। एक मास बाद आध छटाक भोजन रह गया, फिर भी उन की श्रवणशक्ति ज्यों की त्यों थी।

श्वास रोग के कारण बाईजी लेट नहीं सकती थीं, केवल एक तकिया के सहारे, चौबीस घण्टा बैठी रहती थीं। कभी मैं, कभी मुलाबाई, कभी वर्णी मोतीलाल जी, कभी पं० दयाचन्द्रजी और कभी लोकमणि दाउ शाहपुर निरन्तर बाईजी को धर्मशास्त्र सुनाते रहते थे। बाईजी को कोई व्यग्रता न थी। उन्होंने कभी भी रोग वश 'हाय हाय' या 'हे प्रभो क्या करें' या 'जल्दी मरण आ जाओ' या कोई ऐसी औषधी मिल जावे जिससे मैं शीघ्र ही निरोग हो जाऊँ ऐसे शब्द उच्चारण नहीं किये। यदि कोई आता और पूछता कि 'बाईजी! कैसी तबियत है?' तो बाईजी यही उत्तर देतीं कि 'यह पूछने की अपेक्षा आपको जो पाठ आता हो सुनाओ, व्यर्थ बात मत करो।'

एक दिन मैं एक वैद्य को लाया, जो अत्यन्त प्रसिद्ध था। वह बाईजी का हाथ देखकर बोला कि दवाई खाने से रोग अच्छा हो सकता है।' बाईजी ने कहा- 'कब तक अच्छा होगा?' उसने कहा- 'यह हम नहीं जानते।' बाईजी ने कहा-'तो महाराज जाइये और अपनी फीस ले जाइये, मुझे न कोई रोग है और न कोई उपचार चाहती हूँ। जो शरीर पाया वह अवश्य बीतेगा, पचहत्तर वर्ष की आयु बीत गई, अब तो अवश्य जावेगी। इसके रखने की न इच्छा है और न हमारी राखी रह सकती है। जो चीज उत्पन्न होती हैं उसका नाश अवश्यम्भावी है। खेद इस बात का है कि यह नहीं मानता। कभी वैद्य को लाता है और कभी हकीम को। मैं औषधि का निषेध नहीं करती। मेरे नियम है कि औषध नहीं खाना। दो मास में पर्याय छूट जावेगी, इससे जहाँ तक बने परमात्मा का स्मरण कर लूँ, यही परलोक में साथ जावेगा। जन्मभर इसका सहवास रहा। इसके सहवास से तीर्थयात्राएँ की, व्रत तप किये, स्वाध्याय किया, धर्म-कार्यों में सहकारी जान इसकी रक्षा की। परन्तु अब यह रहने की नहीं, अतः इससे न हमारा प्रेम है न द्वेष है।' वैद्य ने मुझसे कहा कि 'बाईजी का जीव कोई महान् आत्मा है। अब आप भूलकर भी किसी वैद्य को न लाना, इनका शरीर एक मास में छूट जावेगा। मैंने ऐसा रोगी, आज तक नहीं देखा।' यह कह वैद्यराज चले गये। उनके जाने के बाद बाईजी बोलीं कि 'तुम्हारी बुद्धि को क्या कहें? जो रुपया वैद्यराज को दिया, यदि उसी का, अन्न मँगाकर गरीबों को बाँट देते तो, अच्छा होता। अब वैद्य को न बुलाना।'

बाईजी का शरीर प्रतिदिन शिथिल होता गया। परन्तु उनकी स्वाध्यायरुचि और ज्ञानलिप्सा कम नहीं हुई। एक दिन बीना के श्रीनन्दनलाल जी आये और मुझसे मुकदमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धी बात करने लगे। बाईजी ने तपक कर कहा- 'भैया! यहाँ अदालत नहीं अथवा वकील का घर नहीं जो आप मुकदमा की बात कर रहे हो, कृपया बाहर जाइये और मुझसे भी कहा कि बाहर जाकर बात कर लो, यहाँ फालतू बात मत करो।' ... इस तरह बाईजी की दिनचर्या व्यतीत होने लगी।

बाईजी को निद्रा नहीं आती थी। केवल रात्रि के दो बजे बाद कुछ आलस्य आता था। हम लोग रात-दिन उनकी वैय्यावृत्य में लगे रहते थे। जब बाईजी की आयु का, एक मास शेष रहा, तब एक दिन श्री लम्पूलाल जी घी वालों ने पूछा कि 'बाईजी! आपको कोई शल्य तो नहीं है।' बाईजी ने कहा- 'अब कोई शल्य नहीं। पर कुछ पहले एक शल्य अवश्य थी। वह यह कि बालक गणेशप्रसाद जिसे कि मैंने पुत्रवत् पाला है, यदि अपने पास कुछ द्रव्य रख लेता तो, इसे कष्ट न उठाना पड़ता। मैंने इसे समझाया भी बहुत, परन्तु इसे द्रव्यरक्षा करने की बुद्धि नहीं। मैंने जब-जब इसे दिया, इसने पाँच या सात दिन में साफ कर दिया। मैंने आजन्म इसका निर्वाह किया। अब मेरा अन्त हो रहा है, इसकी यह जाने, मुझे शल्य नहीं। मेरे पास जो कुछ था इसे दे दिया। एक पैसा भी मैंने परिग्रह नहीं रक्खा। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे मरने के बाद यह एक दिन भी मेरी द्रव्य नहीं रख सकेगा, परन्तु अच्छे कार्य में लगावेगा, असत् कार्य में नहीं।' श्री लम्पूलालजी ने कहा कि 'फिर इनका निर्वाह कैसे होगा?' बाईजी ने कहा कि 'अच्छी तरह होगा। जैसे मेरा इनके साथ कोई जाति सम्बन्ध नहीं था, फिर भी मैंने इसे आजन्म पुत्रवत् पाला, वैसे इसके निमित्त से अन्य कोई मिल जावेगा। इसकी पर्यायगत योग्यता बड़ी बलवती है।' बाईजी की बात सुनकर लम्पू भैया हँस कर चले गये और उनके बाद सिंघई जी भी आये। वे भी हँसकर चले गये।

एक दिन मैंने बाईजी से कहा-'बाईजी! यह शांतिबाई प्राणपनसे आपकी वैय्यावृत्त्य करती है, इसे कुछ देना चाहिये।' बाईजी ने कहा- 'तुम्हारी जो इच्छा हो सो दे दो। मैं तो द्रव्य का त्याग कर चुकी हूँ।'

जब आयु में दस दिन रह गये तब बाईजी ने मुझसे कहा- 'बेटा। एकान्त में कुछ कहना है।' मैं दो बजे दिन को उनके पास जाकर बैठ गया और बोला- बाईजी! मैं आ गया, क्या आज्ञा है?' बाईजी बोलीं- 'संसार में जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग है। हमने तुम्हें चालीस वर्ष पुत्रवत् पाला है, यह तुम अच्छी तरह जानते हो। इतने दीर्घकाल में हमसे यदि किसी प्रकार का अपराध हुआ हो, तो उसे क्षमा करना और बेटा! मैं क्षमा करती हूँ, अथवा क्या क्षमा करूँ, मैंने हृदय से कभी भी कष्ट नहीं पहुँचाया। अब मेरी अन्तिम यात्रा है, कोई शल्य न रहे, इससे आज तुम्हें कष्ट दिया। यद्यपि मैं जानती हूँ कि तेरा हृदय इतना बलिष्ट नहीं कि इसका उत्तर कुछ देगा।'

मैं सचमुच ही कुछ उत्तर न दे सका, रुदन करने लगा, हिलहिली आने लगी, बाईजीने कहा-'बेटा जाओ बाजार से फल लाओ' और ललिता से कहा कि 'भैया को पाँच रुपया दे दे, फल लावे। मुझे वहाँ से कहा कि 'जाओ', मैं ऊपर गया। मुलाबाई ने मुझे देखा मेरा रुदन अवस्था देख नीचे गई। बाईजी ने कहा- 'मूला नाटकसमयसार सुनाओं।' वह सुनाने लगी। तीन या चार छन्द सुनाने के बाद वह भी रुदन करने लगी। बाईजी ने कहा 'मुला'! ऊपर जाओं।' वह ऊपर चली गई। जब शान्तिबाई ने उसे रोते देखा तब वह भी बाईजी के पास गई बाईजी ने कहा 'शान्ति समाधिमरण सुनाओ।' वह भी एक दो मिनट बाद पाठ करती करती रोने लगी। मैं जब बाजार गया तब श्री सिंघई जी मिले। उन्होंने मेरा वदन मलीन देखा और पूछा कि 'बाईजी की तबियत कैसी है? मैंने कहा- 'अच्छी है।' वे बाईजी के पास गये। बाईजी ने कहा- 'सिंघई भैया! अनुप्रेक्षा सुनाओ।' वे अनुप्रेक्षा सुनाने लगे। परन्तु थोड़ी देर में सुनाना भूलकर रुदन करने लगे। इस प्रकार जो जो जावे वही रोने लगे। तब बाईजी ने कहा-'आप लोगों का साहस इतना दुर्बल है कि आप किसी की समाधि कराने के पात्र नहीं।'

इस प्रकार बाईजी का साहस प्रतिदिन बढ़ता गया। इसके बाद बाईजी ने केवल आधी छटाक दलिया का आहार रक्खा और जो दूसरी बार पानी पीती थीं वह भी छोड़ दिया। सब ग्रन्थों का श्रवण छोड़कर केवल रत्नकरण्डश्रावकाचार में से सोलहकारण भावना, दशधा धर्म, द्वादशानुप्रेक्षा और समाधिमरण का पाठ सुनने लगीं। जब आयु के दो दिन गये तब दलिया भी छोड़ दिया, केवल पानी रक्खा और जिस दिन आयु का अवसान होनेवाला था उस दिन जल भी छोड़ दिया। उस दिन उनका बोलना बन्द हो गया। मैं बाईजी की स्मृति देखने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिये मन्दिर से पूजन का द्रव्य लाया और अर्घ बनाकर बाईजी को देने लगा। उन्होंने द्रव्य नहीं लिया और हाथ का इशारा कर जल माँगा। उसने हस्त प्रक्षालन कर गन्धोदक की वन्दना की। मैं फिर अर्घ देने लगा तो फिर उन्होंने हाथ प्रक्षालन के लिये जल माँगा। पश्चात् हस्त प्रक्षालनकर अर्घ चढ़ाया। फिर हाथ धोकर बैठ गई और सिलेट माँगी। मैंने सिलेट दे दी। उस पर उन्होंने लिखा कि 'तुम लोग आनन्द से भोजन करो।'

बाईजी तीन मास से लेट नहीं सकती थीं। उस दिन पैर पसार कर सो गईं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने समझा कि आज बाईजी को आराम हो गया। अब इनका स्वास्थ्य प्रतिदिन अच्छा होने लगेगा। इस खुशी में उस दिन हमने सानन्द विशिष्ट भोजन किया। दो बजे पं० मोतीलालजी वर्णी से कहा कि 'बाईजी की तबियत अच्छी है, अत: घूमने के लिये जाता हूँ।' वर्णीजी ने कहा कि 'तुम अत्यन्त मूढ़ हो। यह अच्छे के चिह्न नहीं हैं, अवसर के चिह्न हैं।' मैंने कहा-'तुम बड़े धन्वन्तरि हो। मुझे तो यह आशा है कि अब बाईजी को आराम होगा।' वर्णीजी बोले-'तुम्हारा सा दुर्बोध आदमी मैंने नहीं देखा। देखो, हमारी बात मानो, आज कहीं मत जाओ।' मैंने कहा-आज तो इतने दिन बाद अवसर मिला है और आज ही आप रोकते हैं।

कुछ देर तक हम दोनों में ऐसा विवाद चलता रहा। अन्त में, मैं साढ़े तीन बजे जलपान कर ग्राम के बाहर चल गया। एक बाग में जाकर नाना विकल्प करने लगा-'हे प्रभो! हमने जहाँ तक बनी बाईजी की सेवा की, परन्तु उन्हें आराम नहीं मिला। आज उनका स्वास्थ्य कुछ अच्छा मालूम होता है। यदि उनकी आयु पूर्ण हो गई तो मुझे कुछ नहीं सूझता कि क्या करूँगा?' इन्हीं विकल्पों में शाम हो गई, अत: सामायिक करके कटरा के मन्दिर में चला गया। वहाँ पर शास्त्र प्रवचन होता था, अत: ९ बजे तक शास्त्र श्रवण करता रहा। साढ़े नौ बजे बाईजी के पास पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि कोई तो समाधिमरण का पाठ पढ़ रहा है और कोई 'राजा राणा छत्रपति' पढ़ रहा है। मैं एकदम भीतर गया और बाईजी का हाथ पकड़ कर पूछने लगा-'बाईजी सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण करो!' बाईजी बोलीं- भैया! कर रहे हैं, तुम बाहर जाओ।' मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि अब तो बाईजी की तबियत अच्छी है। मैं सानन्द बाहर आ गया और उपस्थित महाशयों से कहने लगा कि 'बाईजी अच्छी हैं।' सब लोग हँसने लगे।

मैं जब बाहर आया तब बाईजी ने मोतीलालजी से कहा कि 'अब हमको बैठा दो।' उन्होंने बाईजी को बैठा दिया। बाईजी ने दोनों हाथ जोड़े 'ओं सिद्धाय नम:' कह कर प्राण त्याग दिये। वर्णीजी ने मुझे बुलाया- 'शीघ्र आओ।' मैंने कहा- 'अभी तो बाईजी से मेरी बातचीत हुई। मैंने पूछा था- सिद्ध भगवान् का स्मरण है। उत्तर मिला था हाँ, तुम बाहर जाओ। अब मैं उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं कर सकता था।' वर्णीजी ने कहा कि 'आज्ञा देनेवाली बाईजी अब कहीं चलीं गईं?' क्या ऊपर गईं है? वर्णीजी बोले 'बड़े बुद्धू हो। अरे वह तो समाधिमरण कर स्वर्ग सिधार गईं। जल्दी आओ उनका अन्तिम शव तो देखो कैसा निश्चल आसन लगाये बैठी हैं?' मैं अन्दर गया, सचमुच ही बाईजी का जीव निकल गया था, सिर्फ शव बैठा था। देखकर अशरण भावना का स्मरण हो आया-

'राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार॥
दलबल देवी देवता मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीवको कोई न राखन हार॥

उसी समय कार्तिकेय स्वामी के शब्दों पर स्मरण जा पहुँचा-

जं किंचि वि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि ण य किं पि वि सासयं अत्थि॥
सीहम्मकये पडियं सारंग जह ण रक्खए को वि।
तह मिच्चुणा वि गहियं जीवं पि ण रक्खए को वि॥'

जो कोई वस्तु उत्पन्न होती है, उसका विनाश नियम से होता है। पर्यायरूप कर कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है। सिंह के पैर के नीचे आये मृग की जैसे कोई रक्षा नहीं कर सकता, उसी प्रकार मृत्यु के द्वारा गृहीत इस जीव की कोई रक्षा नहीं कर सकता। इसका तात्पर्य यह है कि पर्याय जिस कारणकूट से होती है, उसके अभाव में वह नहीं रह सकती। प्राणी के अन्दर एक आयु प्राण है उसका अभाव होनेपर एक समय भी जीव नहीं रह सकता। अन्य की कथा छोड़ो, स्वर्ग के देवेन्द्र भी आयु का अवसर होने पर एक समयमात्र भी स्वर्ग में ठहरने के लिए असमर्थ हैं। अथवा देवेन्द्रों की कथा छोड़ो, श्रीतीर्थंकर भी मनुष्यायु का अवसान होने पर एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेकेण्ड भी नहीं रह सकते। यह बात यद्यपि आबालवृद्ध विदित है, फिर भी पर्याय के रखने के लिये मनुष्यों द्वारा बड़े-बड़े प्रयत्न किये जाते हैं। यह सब पर्यायबुद्धि का फल है। इसका भी मूलकारण वही है कि जो संसार बनाये हुए है। जिन्हें संसार मिटाना हो उन्हें इस पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

'हेउअभावे णियमा णाणिस्स आसवणिरोहो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होइ॥'

संसार के कारण मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योग ये चार हैं। इनके अभाव में ज्ञानी जीव के आस्रव का अभाव होता है। जब आस्रवभाव का अभाव हो जाता है, तब ज्ञानावरणादि कर्मोंका अभाव हो जाता है और जब कर्मों का अभाव हो जाता है, तब नोकर्म-शरीर का भी अभाव हो जाता है एवं जब औदारिकादि शरीरों का अभाव हो जाता है तब संसार का अभाव हो जाता है... इस तरह यह प्रक्रिया अनादि से हो रही है और जब तत्त्वज्ञान हो जाता है तब यह प्रक्रिया अपने आप लुप्त हो जाती है, स्वाभाविक प्रक्रिया होने लगती है। पर्यायक्षणभंगुर संसार में भी है और मुक्ति में भी है।

बाईजी का शव देखकर मैं तो चित्रामका-सा पुतला हो गया। वर्णी जी ने कहा कि 'खड़े रहने का काम नहीं।' मैंने कहा-'तो क्या रोने का काम है?' वर्णीजी बोले- 'तुमको तो चुहल सूझ रही है। अरे जल्दी करो और उनके शव का दाह आध घण्टे में कर दो, अन्यथा सम्मूर्छन त्रस जीवों की उत्पत्ति होने लगेगी।' मैं तो किंकर्तव्य के ऊहापोह में पागल था, परन्तु वर्णीजी के आदेशानुसार शीघ्र ही बाईजी की अर्थी बनाने में व्यस्त हो गया। इतने में ही श्रीमान् पं० मुन्नालालजी, श्री होतीलाल जी, पं० मूलचन्द्रजी आदि आ गये और सबका यह मंसूबा हुआ कि विमान बनाया जावे। मैंने कहा कि 'विमान बनाने की आवश्यकता नहीं।' शव को शीघ्र ही श्मशान भूमि में ले जाना अच्छा है। कटरा में श्रीयुत सिंघई, राजारामजी और मौजीलालजी की दुकान से चन्दन आ गया। श्रीयुत रामचरणलाल जी चौधरी भी आ गये। आपने भी कहा 'शीघ्रता करो।' हम लोगों ने १५ मिनट के बाद शव उठाया। उस समय रात्रि के दस बजे थे। बाईजी के स्वर्गवास का समाचार बिजली की तरह एकदम बाजार में फैल गया और श्मशान भूमि में पहुँचते पहुँचते बहुत बड़ी भीड़ हो गई।

बाईजी का दाह संस्कार श्रीरामचरणलाल जी चौधरी के भाई ने किया। चिता धू-धू कर जलने लगी और आध घण्टे में शव जल कर खाक हो गया। मेरे चित्त में बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। हृदय रोने को चाहता था, पर लोकलज्जा के कारण रो नहीं सकता था। जब वहाँ से सब लोग चलने को हुए, तब मैंने सब भाइयों से कहा कि-'संसार में जो जन्मता है, उसका मरण अवश्य होता है। जिसका संयोग है उसका वियोग अवश्यंभावी है। मेरा बाईजी के साथ चालीस वर्ष से सम्बन्ध है। उन्होंने मुझे पुत्रवत् पाला। आज मेरी दशा माता विहीन पुत्रवत् हो गई है। किन्तु बाईजी के उपदेश के कारण मैं इतना दुःखी नहीं हूँ जितना कि पुत्र हो जाता है। उन्होंने मेरे लिये अपना सर्वस्व दे दिया। आज मैं जो कुछ उन्होंने मुझे दिया सबका त्याग करता हूँ और मेरा स्नेह बनारस विद्यालय से है, अतः कल ही बनारस भेज दूँगा। अब मैं उस द्रव्य में से पाव आना भी अपने खर्च में न लगाऊँगा।' श्री सिंघई कुन्दनलाल जी ने कहा कि 'अच्छा किया, चिन्ता की बात नहीं। मैं आपका हूँ। जो आपको आवश्यकता पड़े मेरे से पूरी करना।' ..... इस तरह श्मशान से सरोवर पर आये। सब मनुष्यों ने स्नान कर अपने-अपने घर का मार्ग लिया। कई महाशय मुझे धर्मशाला में पहुँचा गये। यहाँ पर आते ही शान्ति, मुला और ललिता रुदन करने लगीं। पश्चात् शान्त हो गईं। मैं भी सो गया, परन्तु नींद नहीं आई, रह-रह कर बाईजी का स्मरण आने लगा।

मेरी जीवन गाथा (भाग १ पृ. ४०७-४१६)
से साभार

आपन को न सराहिये, पर निन्दिये नहि कोय।
चढ़ना लम्बा धौहरा, ना जानै क्या होय॥ संत कबीर

अर्थ- अपने आपको कभी मत सराहो (अपनी प्रसंशा मत करो) और दूसरों की निंदा मत करो। क्योंकि अभी तुम्हें आचरण रूपी लम्बे (ऊँचे) मीनार पर चढ़ना है, न जाने क्या हो (न जाने सफल हों कि नहीं)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार परिभ्रमण का कारण

शल्यत्रय

आर्यिका श्री सुशीलमती जी
(परम पूज्य आचार्य श्री शिवसागरजी की शिष्या)

शल्य का स्वरूप– 'शृणाति हिनस्तीति शल्यम्' यह शल्य शब्द का निरुक्ति अर्थ है। जो प्राणी को पीड़ा देता है वह शल्य है, ऐसी तत्त्वज्ञों ने शल्य शब्द की व्याख्या की है। जिस प्रकार शरीर में लगा हुआ या चुभा हुआ बाण या काँटा आदि प्राणी को दुःखी करता है, उसी प्रकार शल्य भी प्राणी को संसार-परिभ्रमण कराते हुए व्यथित करता है।

शल्य के भेद– माया, मिथ्या और निदान के भेद से शल्य के तीन भेद हैं। अथवा द्रव्य और भावशल्य के भेद से दो प्रकार का भी शल्य होता है। मिथ्यादर्शन, माया और निदान ऐसे तीन शल्यों की जिनसे उत्पत्ति होती है ऐसे कारणभूत कर्म को द्रव्यशल्य तथा इनके उदय से जीव के माया, मिथ्या व निदानरूप परिणाम भावशल्य है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और योग के भेद से चार भेद भावशल्य के तथा सचित्त, अचित्त और मिश्र शल्य के भेद से द्रव्यशल्य तीन प्रकार का है।

शंका, कांक्षा आदि सम्यग्दर्शन के शल्य हैं। अकाल में पढ़ना और अविनयादि करना ज्ञान के शल्य हैं। समिति और गुप्तियों में अनादर रहना चारित्रशल्य, असंयम में परिणति योगशल्य है। दासादिक सचित द्रव्यशल्य, सुवर्णादि पदार्थ अचित्त द्रव्यशल्य तथा ग्रामादि मिश्रशल्य हैं। इस प्रकार शल्य के भेद-प्रभेदों का वर्णन भगवती-आराधना में किया है। प्रस्तुत लेख में मुख्यतया माया, मिथ्या और निदान शल्य सविस्तार विवेच्य हैं अतः उद्देश्यानुसार उन्हीं का स्वरूप आगे वर्णित है।

माया शल्य : स्वरूप– आत्मा का कुटिलभाव माया है, इसे निकृति या वंचना भी कहते हैं। दूसरों को ठगने के लिए जो कुटिलता या छल आदि किये जाते हैं, वे माया हैं। यह बाँस की गँठीली जड़, मेंढे का सींग, गोमूत्र की वक्र रेखा और अवलेखनी के समान चार प्रकार की होती है।

राग के उदय से परस्त्री आदि में वाञ्छारूप तथा द्वेष से अन्य जीवों के मारने, बाँधने अथवा छेदने रूप मेरे दुर्ध्यान को कोई नहीं जानता ऐसा मानकर निज-शुद्धात्मभावना से उत्पन्न निरन्तर आनन्दरूप सुखामृतजल से अपने चित्त की शुद्धि न करते हुए बाहर में बगुले जैसे वेष को धारण कर लोगों को प्रसन्न करना माया-शल्य कहलाती है।

निकृति, उपधि, सातिप्रयोग, प्रणिधि और प्रतिकुंचन ये माया के पाँच प्रकार हैं। धन के विषय में अथवा अन्य किसी कार्य के विषय में जिसकी अभिलाषा उत्पन्न हुई है, ऐसे मुनष्य को फँसाने का, ठगने का चातुर्य निकृति माया है। अच्छे परिणामों को छिपाकर धर्म के निमित्त से चोरी आदि दोषों में प्रवृत्ति उपधि माया है। धन के विषय में असत्य बोलना, किसी की धरोहर का कुछ भाग हरण कर लेना, दूषण लगाना अथवा प्रशंसा करना सातिप्रयोग माया है। हीनाधिक मूल्य की सदृश वस्तुएँ आपस में मिलाना, तौल और माप के सेर, पसेरी आदि बाँटों का अथवा माप-तौल के अन्य साधनों को कम-अधिक रखकर उनसे लेन-देन करना, असली-नकली पदार्थ परस्पर में मिलाना यह सब प्रणिधि माया है। आलोचना करते समय अपने दोषों को छिपाना प्रतिकुंचन माया है।

इस प्रकार माया का भेद-प्रभेदों सहित स्वरूप जानकर इसका परित्याग कर देना चाहिए। मायाचारी पुरुष अन्य लोगों की वञ्चना करके मन में यह सोचता है कि मैंने अमुक व्यक्ति को ठग लिया, किन्तु ऐसा सोचने और करनेवाला आत्मवञ्चना करता है, स्वयं को ठगता है। मायाचारी व्यक्ति के मन-वचन-काय ऋजु नहीं होते। वह मन से कुछ चिंतन करता है, वचनों से अन्य ही अभिव्यक्त करता है तथा काय से कुछ और ही चेष्टा करता है। मायाचार करनेवालों का इहलोक और परलोक दोनों ही पापमय होते हैं। शास्त्रों में अनेक दृष्टांत भरे पड़े हैं, जिनने भी मायाचार किया, जो मायाशल्य से विद्ध थे, उनका इहलोक में तो अपमान हुआ ही, किन्तु परलोक भी दुःखों से भरा हुआ मिला। कौरवों ने पांडवों के साथ कितनी बार मायाचार किया, मात्र ऐश्वर्य के लोभ में उनका प्राणान्त तक करने के लिए मायाजाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचा, लाक्षा गृह में पांडवों को जलाने का षडयंत्र किया, किन्तु पुण्यशाली चरमशरीरी तथा सर्वार्थसिद्धि विमानों में उत्पन्न होनेवाले वे महात्मा पुरुष कैसे जल सकते थे? हाँ! कौरवों के कारण उनको १२ वर्ष तक, माता कुन्ती और अर्जुन-पत्नी द्रौपदी के साथ वनवास के कष्ट पूर्वकर्मोदय होने से अवश्य भोगने पड़े। अन्त में मायावी कौरवों का पतन हुआ। इसी प्रकार रावण का दृष्टांत भी है। रावण ने सीता को मायाचार करके चुराया, परिजनों के समझाने पर भी, उसने सीता को वापस नहीं किया। युद्ध में विजय प्राप्त की राम ने, तथा रावण अपने परिजनों का (विभीषणादि का) शत्रु भी बना और अन्त में मरण को प्राप्त होकर श्वभ्र (नरक) गामी बना। यह माया शल्य महादोषों की खानि-स्वरूप है और आत्मा को दुर्गति का पात्र बनानेवाली है, अतः कल्याणेच्छु जनों को भविष्य में तिर्यंचयोनि के कारणभूत मायाचार का परित्याग करना चाहिए।

मिथ्यादर्शन शल्य - मिथ्यात्वकर्म के उदय से तत्त्वों का अश्रद्धानरूप परिणाम होता है, उस अश्रद्धान से भगवान् अर्हन्त परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल मार्गाभास में मार्ग का श्रद्धान, तथा जीवादि तत्त्वों के स्वरूप में अश्रद्धान होता है, यही मिथ्यादर्शन है।

मिथ्यात्व के प्रकार- मिथ्यादर्शन एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान के भेद से पाँच प्रकार का है। गृहीत-अगृहीत के भेद से दो प्रकार का भी है। इसके नैसर्गिक और परोपदेश की अपेक्षा भी दो भेद पाये जाते हैं। अथवा ३६३ मिथ्यामतवादियों की अपेक्षा इसके ३६३ भेद भी हैं। परमागम से अन्य भेद भी जान लेना चाहिए।

एकान्त- यही है, इसी प्रकार है, धर्म और धर्मी में एकान्तरूप अभिप्राय रखना, जगत के पदार्थ सत् ही हैं, असत् ही हैं, एक ही है, अनेक ही हैं, सावयव ही हैं, निरवयव ही हैं, नित्य ही हैं, अनित्य ही हैं इत्यादि एकान्त अभिनिवेश को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं।

विपरीत– सग्रन्थ को निर्ग्रन्थ मानना, केवली को कवलाहारी मानना, स्त्री को मुक्ति होती है, इस प्रकार मानना विपरीत मिथ्यादर्शन है। विपरीत मिथ्यादृष्टि हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, राग-द्वेष, मोह और अज्ञान से ही मुक्ति होती है, ऐसे अभिनिवेश से युक्त होता है। ये सब तो संसार के कारण हैं, किन्तु ये मुक्ति के कारण हैं, ऐसा मानना तो प्रत्यक्ष विपर्यास है।

विनय– परमार्थ देव-शास्त्र-गुरु तथा दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तपरूप समीचीन आराधनाओं का, जिस प्रकार विनय किया जाता है, उसी प्रकार रागी, द्वेषी, संसारी पुरुषों का या अन्य मिथ्याधर्मों का तथा कुतप तपनेवाले पुरुषों का भी विनय करना, उनकी प्रशंसादि करना विनयमिथ्यात्व है।

संशय– जिसमें तत्त्वों का निश्चय नहीं है, ऐसे संशयज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाले श्रद्धान को संशयमिथ्यात्व कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्षमार्ग हैं या नहीं, इस प्रकार संशय बना रहता है। जिसे पदार्थों के स्वरूप का निश्चय नहीं है, उसे 'जीवादि पदार्थों का स्वरूप ऐसा ही है' इस प्रकार का निश्चयात्मक श्रद्धान नहीं होता है। अर्थात् संशय मिथ्यादृष्टि को सर्वत्र सन्देह ही रहता है, वह निश्चय नहीं कर पाता।

अज्ञान– नित्यानित्य विकल्पों से विचार करने पर जीवाजीवादि पदार्थ नहीं है, अतएव सब अज्ञान ही है, ज्ञान नहीं है, ऐसे अभिनिवेश को अज्ञानमिथ्यात्व कहते हैं। अज्ञानमिथ्यादृष्टि 'पशुवध-धर्म है' इस प्रकार अहित में प्रवृत्ति कराने का उपदेश देता है। उसके मत में हित-अहित का बिलकुल भी विवेचन नहीं है। वह अज्ञान से ही मोक्ष मानता है।

इस प्रकार मिथ्यादर्शन का स्वरूप, भेद-प्रभेद आदि को परमागम के अनुसार, भली-भाँति समझकर उसका परित्याग करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्व सबसे बड़ा पाप है। शरीरधारी जीवों को मिथ्यात्व के समान अन्य कुछ भी अकल्याणकारी नहीं है।

निदानशल्य- भोगाकांक्षा से जिसमें या जिसके कारण नियम से चित्त दिया जाता है, वह निदान है। अर्थात् भोगों की लालसा निदान है। निदान नाम का शल्य दुःखद होने से उसे भी गणधरादि महापुरुषों ने त्याज्य माना है।

निदान के भेद- प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से निदान दो प्रकार का है। प्रशस्त निदान भी दो प्रकार का है। एक संसारमूलक और दूसरा मोक्ष में कारणभूत। अप्रशस्त निदान भी भोगकृत और मानकृत के भेद से दो प्रकार का है।

पुरुषत्व, वज्रवृषभनाराचादि उत्कृष्टसंहनन, वीर्यान्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रायकर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाला दृढ़परिणाम आदि मोक्ष की साधनभूत सामग्री मुझे प्राप्त हो, मेरे दु:खों का नाश, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की प्राप्ति हो इत्यादि जो निदान-प्रार्थना है, ये प्रशस्त-निदान हैं और मोक्ष की कारणभूत सामग्री की इसमें याचना की गई है। अथवा जिनधर्म की प्राप्ति होने के योग्य देश (आर्यक्षेत्र), योग्य स्थान, जहाँ वीतरागधर्म के आराधक श्रावक रहते हैं और भाव-शुभपरिणाम, धनिक एवं बन्धु-बांधवों से संयुक्त परिवार में उत्पन्न होने का निदान करना संसार सम्बन्धी प्रशस्त निदान है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रशस्त निदानों में प्रथम निदान मोक्ष की कारणभूत सामग्री का याचक होने से सर्वथा त्याज्य नहीं है। अप्रशस्त निदान तो सर्वथा त्याज्य ही हैं, निंद्य हैं और सिद्धिमन्दिर में प्रवेश कराने में बाधक हैं। क्रुद्ध होकर मरण-समय में शत्रुवधादि की इच्छा करना अप्रशस्तनिदान है। अथवा मान के वशीभूत होकर उत्तम मातृवंश, उत्तम पितृवंश की अभिलाषा करना, आचार्य पदवी, गणधरपद, तीर्थंकरपद, सौभाग्य, आज्ञा और सुन्दरपना इत्यादि की प्रार्थना करना मानकृत अप्रशस्त निदान है। यद्यपि आचार्य गणधर और तीर्थंकर जैसे पदों की इच्छा की गई हो, तो भी मानकषाय से दूषित होने से वह अप्रशस्त निदान ही है। देव-मनुष्यों में प्राप्त होने वाले भोगों की अभिलाषा करना भोगकृत निदान है। श्रेष्ठिपद, सार्थवाहपद, केशवपद, नारायण-प्रतिनारायण-पद, चक्रवर्तीपद आदि भोगों के लिए इच्छा करना भोगनिदान है।

जिस प्रकार कोई कुष्ठरोगी कुष्ठरोग की नाशक रसायन को प्राप्तकर उसको जलाता है, उसी प्रकार निदान करनेवाला मनुष्य सर्वदु:खों का नाश करने में समर्थ संयम का भोगकृत निदान से नाश करता है। जो प्राणी भोगों की आसक्ति में अपना मन लगाता है उसे हितकर-अहितकर का परिज्ञान नहीं होता। सर्पदंश से युक्त मनुष्य के समान वह मूर्च्छा, दाह और प्रलाप से सहित होता है। भोगासक्ति के कारण वह उनकी पूर्ति के अभाव में अपने आपको दु:खी अनुभव करता है और पूर्ति होने पर भोगों के प्रति तृष्णावृद्धि से भी दु:खी होता है।

इस प्रकार तीनों ही प्रकार के शल्य जीव को कष्टदायक हैं। अत: अहिंसादि व्रतरूप सम्पत्ति के धारक भव्यजन हृदय में प्रविष्ट माया, मिथ्या व निदानरूप शल्यत्रय का परित्याग करें। संसार परिभ्रमण के कारणभूत इन तीनों शल्यों को पृथक् करके ही संयमधारणपूर्वक इस कलिकाल में भी स्वर्गगमन कर वहाँ से पुन: मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर सकते हैं। तथा मनुष्य पर्याय में पुन: संयम धारण कर अनादिकालीन कर्मबन्ध से आत्मा को मुक्तकर शाश्वत सुख के स्थानभूत मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

'आचार्य श्री धर्मसागर अभिनन्दनग्रन्थ'
से साभार

अन्तर्जगत

किसी सज्जन ने आचार्य भगवन्त से कहा- आज पुन: देश भोग से योग की ओर लौट रहा है। आज जगह-जगह पर योगशिविर आयोजित किये जा रहे हैं। योगासन के माध्यम से लोगों को रोग मुक्त किया जा रहा है। बड़ी से बड़ी बीमारियों में भी लोगों को योगासन से लाभ मिल रहा है। आज योग शिक्षा के क्षेत्र में देश बहुत ध्यान दे रहा है। आज योग का क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय हो गया है। यह सब आचार्य महाराज चुपचाप सुनते रहे फिर मुस्कुरा कर बोले कि **"योग का क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय नहीं अंतर्जगत् है।"**

योग लगाने का अर्थ है मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को बाह्य जगत से हटाकर अंतर्जगत् की ओर ले आना। यह कितनी गम्भीर बात गुरुदेव के श्रीमुख से हम लोगों को उपलब्ध हुई, आज की सबसे बड़ी योग-साधना यही है अंतर्दृष्टि का प्राप्त होना। इस बहिर्मुखी आत्मा को अंतर्मुखी बनाने का एकमात्र उपाय है- योग के माध्यम से मन-वचन-काय एकाग्र करना और आत्मा को ध्यान का विषय बनाना।

(अतिशय क्षेत्र बीना बारहा जी, 30.08.2005)

मुनिश्री कुन्थुसागरकृत 'अनुभूत रास्ता' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहू श्री नेमिचन्द्र

पं० कुन्दनलाल जैन

साहू नेमिचन्द्र अपने समय के बड़े धार्मिक, अति धनिक एवं प्रतिष्ठित श्रेष्ठी थे। उन्हें देव, शास्त्र और गुरु पर असीम आस्था थी। उनके विषय में विस्तार से लिखने से पूर्व उन महाकवि का परिचय कराना नितान्त आवश्यक है, जिनके कारण साहू नेमिचन्द्र की यशोगाथा अमर हो गई और लोग उन्हें आज श्रद्धा से स्मरण करते हैं।

वे महाकवि थे, अपभ्रंश भाषा के श्रेष्ठ कवि विबुध श्रीधर। अपभ्रंश में रचना करनेवाले श्रीधर नाम के कई कवि हुए हैं। साहू नेमिचन्द्र के आग्रह, अनुनय-विनय और प्रार्थना पर अपभ्रंश में 'वड्ढमाण चरिउ' की रचना करनेवाले कविश्रेष्ठ विबुध श्रीधर का समय वि. सं. ११९० है।

कवि विबुध श्रीधर ने छह काव्यों की रचना की- (१) '**पासणाहचरिउ**' जो नट्टल साहू की प्रार्थना पर की, (२) '**वड्ढमाणचरिउ**' जो साहू नेमिचन्द्र की प्रार्थना पर की, (३) '**सुकुमालचरिउ**' जो पीथे साहू के पुत्र कुमर की प्रार्थना पर की, (४) '**भविसयत्तकहा**' जो सुपट्ट साहू की प्रार्थना पर की, (५) '**संति-जिणेसर-चरित**' और (६) '**चंदप्पहचरिउ**'। इनमें से अन्तिम दोनों रचनाएँ अप्राप्य हैं, अत: उनके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। विभिन्न भण्डारों में ढूँढने से ये दोनों ग्रन्थ मिल सकते हैं।

कवि की उपर्युक्त रचनाएँ वि. सं. ११८९ से वि. सं. १२३० के मध्य की हैं। उन्होंने '**पासणाहचरिउ**' में दिल्ली का जो ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया है, वह तत्कालीन इतिहास का बहुमूल्य साक्ष्य एवं तथ्य है और सभी इतिहासकार इसे प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते हैं, जो सर्वथा निर्विवाद और सत्य है। कवि हरियाणा के निवासी थे और अग्रवाल जैन थे। जब वे यमुना पारकर दिल्ली आये, तब वहाँ अनंगपाल तोमर द्वितीय का राज्य था। दिल्ली को उस समय ढिल्ली क्यों कहा जाता था, यहाँ इसकी थोड़ी-सी चर्चा कर देना कुछ अप्रासंगिक न होगा।

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार अनंगपाल के पूर्वज कल्हण राजा हस्तिनापुर में राज्य करते थे। एक बार जब वे शिकार खेलने गये तो दिल्ली के आस-पास आकर उन्होंने देखा कि एक खरगोश उनके शिकारी कुत्ते से जूझ रहा है और उसे दु:खी कर रहा है। इसे देख राजा कल्हण बड़े विस्मित हुए और उन्होंने इसे वीर-भूमि समझ वहाँ एक लोहे की कील्ली गाड़ दी और उस स्थान का नाम कील्ली अर्थात् कल्हणपुर रख दिया। कई पीढ़ियों बाद जब वहाँ किला बनवाने की बात आई तो राजपुरोहित से भूमि-पूजन तथा स्थान-शुद्धि को कहा। राजपुरोहित ने पुन: उसी स्थान पर कील्ली गाड़ी और कहा कि पाँच मुहूर्त तक इसे कोई न छेड़े। जब तक यह कील्ली गड़ी रहेगी तोमर वंश अखण्ड और चिरस्थायी बना रहेगा, इसे कोई भी परास्त न कर सकेगा। इतनी भविष्यवाणी कर राजपुरोहित चले गये।

राजपुरोहित के जाते ही राजा अनंगपाल द्वितीय ने जिज्ञासावश वह कील्ली तुरन्त उखाड़ दी जिससे वहाँ रक्त की धारा बह निकली, कील्ली का अग्रभाग भी रक्तरंजित था। जब पुरोहित को पता चला तो, वह बड़ा दु:खी हुआ और उसने कहा- हे राजन्, इस कील्ली के ढीली होने से तुम्हारा राज्य भी ढीला हो जाएगा। तब से यह स्थान ढिल्ली के नास से प्रसिद्ध हुआ। बाद में यह दिल्ली नाम में परिवर्तित हुआ। विभिन्न कालों में दिल्ली को विभिन्न नामों से ख्याति मिली। यथा- इन्द्रप्रस्थ, योगिनीपुर शाहजहानाबाद आदि-आदि लगभग १५-१६ नाम दिल्ली के इतिहास में विख्यात हैं।

कवि विबुधश्रीधर, जब हरियाणा से चलकर दिल्ली में अपने परम भक्त साहू अल्हण के घर ठहरे तो, उन्होंने बड़े आदर एवं भक्तिभाव से कवि का सत्कार किया। एक दिन साहू अल्हण ने तत्कालीन राजश्रेष्ठी प्रसिद्ध सार्थवाह साहू नट्टल की चर्चा की और उनसे भेंट करने को प्रेरित किया, पर कवि विबुध श्रीधर ने सेठों के दुर्जन-भाव के कारण वहाँ जाने से इन्कार कर दिया।

तब अल्हण साहू ने कविवर को विश्वास दिलाया कि नट्टल साहू ऐसे सेठ नहीं हैं, वे बड़े धार्मिक और विद्वानों का आदर करनेवाले हैं। अत: आप एक बार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो अवश्य ही उनसे मिलिए। मैं आपके साथ रहूँगा। अल्हण साहू से इस तरह आश्वस्त हो कविवर नट्टल साहू से मिलने गये।

नट्टल साहू को जब कविवर के शुभागमन का पता चला, तो वे स्वयं उनकी अगवानी के लिए दलबल-सहित नंगे पाँव पैदल यात्रा करके आये और उन्हें बड़े भक्ति-भाव से आदरसहित घर ले आये। श्रद्धासहित उनका सत्कार किया, प्रतिदिन उनसे शास्त्र-प्रवचन सुना। उनके व्यक्तित्व, विद्वत्ता एवं प्रतिभा से प्रभावित हो नट्टल साहू ने कविवर से पार्श्वप्रभु का चरित्र सुनने की हार्दिक अभिलाषा प्रकट की। कविवर ने उनके अनुरोध पर '**पासणाहचरिउ**' की रचना की। कविवर के कहने, पर नट्टल साहू ने महरौली के पास भगवान् आदिनाथ का जिनालय निर्माण कराया, जिसके ध्वंसावशेष अभी भी कुतुबमीनार के आस-पास के खण्डहरों में यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं।

कवि विबुधश्रीधर का जन्म वि.सं. ११५४ के आस-पास माना जाता है। वे लगभग ७६ वर्ष की आयु तक साहित्य-रचना करते रहे। इनके पिता का नाम गोल्हपा था, माता का नाम बील्हा। इसके अतिरिक्त कवि के विषय में कोई और अधिक जानकारी नहीं मिलती है। कवि ने वोदाउव (बदायूँ) निवासी जैसवाल कुलोत्पन्न श्री नरवर और उनकी पत्नी सोमइ (सुमति) के पुत्र साहू नेमिचन्द्र के अनुरोध और प्रार्थना पर **वड्ढमाणचरिउ** की रचना की थी।

कवि ने अपने ग्रन्थ **वड्ढमाणचरिउ** की प्रत्येक संधि के अन्त में साहू नेमिचन्द्र की प्रशंसा में एक-एक संस्कृत श्लोक लिखा है, इस प्रकार साहू नेमिचन्द्र की इन श्लोकों द्वारा एक अच्छी-खासी प्रशस्ति बन जाती है।

साहू नेमिचन्द्र की पत्नी का नाम वाणी था। इनके रामचन्द्र, श्रीचन्द्र और विमलचन्द्र नाम के तीन पुत्र थे। कवि के प्रशंसात्मक श्लोकों से साहू नेमिचन्द्र के गुणों एवं प्रतिष्ठा का पता लगता है।

साहू नेमिचन्द्र धार्मिक, दयालु, परोपकारी थे और जिनभक्ति आदि गुणों से मंडित थे। प्रशस्ति में प्रयुक्त '**न्यायान्वेषण तत्परः**' तथा '**बन्दिदत्तोतुचन्द्रः**' जैसे विशेषणों से ज्ञात होता है कि साहू नेमिचन्द्र राज-सम्मानित पदाधिकारी थे, और न्याय-विभाग में संबंधित दण्डाधिकारी के पद पर आसीन थे। साहू नेमिचन्द्र अपने समय के प्रतिष्ठित व्यापारी थे, तथा उनका व्यापारिक संबंध राज्य से बाहर विदेशों से भी था। लगता है वे अपने समय के बड़े भारी सार्थवाह भी रहे हों, जिनके जहाज, यहाँ का माल विदेशों में ले जाते और वहाँ का माल यहाँ लाते थे।

साहू नेमिचन्द्र ज्योतिषशास्त्र एवं खगोलविद्या में भी निष्णात एवं पारंगत थे। साहू नेमिचन्द्र प्रतिष्ठित राज-सम्मानित अधिकारी थे, वे सज्जनों की प्रशंसा करते तथा दुष्टों को दण्ड देते थे। वे साधुस्वभावी थे। इतनी अधिक भोग-सम्पदा को भोगते हुए भी, वे संसार से सदा विरक्त रहते थे, गुणीजनों का सम्मान करते थे, जिनमंदिर में मुनिजनों से समताभावपूर्वक धर्म-चर्चा सुना करते थे, समता-भाव धारण करते हुए बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करते थे, स्वयं स्वाध्याय-प्रेमी और विद्वज्जनानुरागी थे, शंकादिक दोषों से रहित दस धर्मों का पालन करते थे और मिथ्यात्व का नाश करते थे। वे अपने कुल-कमल के लिए सूर्य के समान थे, तथा कुलकीर्ति को बढ़ानेवाले थे, आगम-सम्मत पर-मतों की बातों को भी मानते थे। वे संवेगादिक गुणों से अलंकृत थे तथा प्रतिदिन जिनार्चन किया करते थे। इस तरह साहू नेमिचन्द्र अनेक मानवीय एवं धार्मिक गुणों से सम्पन्न थे, इसीलिए कवि विबुधश्रीधर ने साहू नेमिचन्द्र की प्रशंसा में नौ श्लोकों की प्रशस्ति लिखी और उनके अनुरोध पर कवि ने 'वड्ढमाणचरिउ' रचा। ऐसे गुणानुरागी श्रेष्ठी को शत-शत नमन है।

जैन इतिहास के प्रेरक व्यक्तित्व
(भाग १) से साभार

दिगम्बरत्व

दिगम्बरत्व के निकट न पहुँचे
जब अपूर्व विद्वान।
तो कैसे बन सकता है वह
वीतराग भगवान॥

श्रुत की मेंहदी

श्रुत की मेंहदी रची हुई है,
विद्वानों के कर कमलों में।
समयसार के सुमन खिल रहे,
निःस्पृहता के गमलों में॥

योगेन्द्र दिवाकर, सतना (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधर्मी-विवाह-सम्बन्ध आगमोक्त

डॉ० राजेन्द्रकुमार 'बंसल'

आचार्य पद्मनन्दि के 'पद्मनंदि पंचविंशतिका' के निम्न श्लोक में कलिकाल में श्रावक का महत्त्व दर्शाया गया है-

संप्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः।
धर्मश्च दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम्॥ 6/6

अर्थ- इस कलिकाल में जिनालय, मुनि, धर्म और दान, इन सबका मूल कारण श्रावक है। श्रावक न हो तो इनमें से, कोई भी रक्षित नहीं रह सकता। इन सब की स्थिति तभी तक है, जब तक श्रावक और श्राविकाओं में धार्मिक प्रेम है।

गृहस्थ जीवन का आधार विवाह है। विवाह सम्बन्ध किनके मध्य हो, इसका निर्धारण आगम के, आलोक में, सुनिश्चित सामाजिक परम्पराओं द्वारा होता है। ये परम्पराएँ देश-काल और परिस्थितियों के अनुसार अपने मूल सिद्धान्त को कायम रखते हुए बदलती रहती हैं। विवाहपद्धति आदि में भी तद्नुसार परिवर्तन होता रहता है। जैन-समाज में विवाह सम्बन्धों की आगमिक व्यवस्था पर प्रकाश डालना इस आलेख का उद्देश्य है।

समाज में दो विचारधाराएँ प्रवहमान हैं। महासभा के अनुसार अपनी-अपनी जाति में ही विवाह सम्बन्ध होना चाहिए। इसे सजातीय विवाहप्रथा कहते हैं। और विधवाविवाह नहीं होना चाहिए। परिषद् के अनुसार, अंतर्जातीय और विधवा विवाह करना समाज के हित में है, अतः उसको करना चाहिए।

विद्वत्परिषद के खुरई अधिवेशन में **पं. देवकीनन्दन जी सिद्धांतशास्त्री स्मृतिग्रंथ** उपहार में मिला था, उसका अध्ययन कर रहा था। बहुत ही रोचक और प्रेरक ग्रंथ है। तत्कालीन समाजिक चिंतन का दर्पण भी है। पं. जी सा. निःस्पृही, निरभिमानी, स्वाभिमानी, आगमवेत्ता, समाजसुधारक, शिक्षा-विद्, समस्या-निवारक और साहसी वृत्ति के थे। व्याख्यान वाचस्पति के नाम से प्रसिद्ध थे। स्मृतिग्रंथ के दो प्रसङ्ग प्रस्तुत हैं-

1. सन् 1937-38 में परवारसभा अधिवेशन जबलपुर में आयोजित था। पं. जी सा. सभापति थे, गजरथ-विरोधी वातावरण था। विस्फोटक स्थिति थी। पं. जी सा. ने समाधान निकाला। वहाँ फेरी द्वारा कपड़ा बेचने वाले धर्मचन्द्र नाम के जैन युवक ने अंग्रेज युवती से शादी की। उसका पिता उच्च पद पर था और लड़की ने जैनधर्म स्वीकार लिया था। समाज ने देवदर्शन का घोर विरोध किया। पं. श्री देवकीनन्दन जी ने साहस पूर्वक मंदिरजी के द्वार खुलवाकर नव-युगल को मंदिर में प्रवेश कराया और मंच से उन्हें मंगल आशीर्वाद भी दिया। (स्मृतिग्रंथ-पृ.77)

2. दिनाङ्क 9-10 नवम्बर 1933 को ब्यावरा (राज.) में शास्त्री परिषद् का अधिवेशन था। वहाँ परम पू. आचार्य शांतिसागर जी (दक्षिण) और आ. शांतिसागर जी (छाणी) दोनों विराजमान थे। शास्त्री परिषद् के सभापति श्री सेठराव जी सखाराम दोशी थे। वे श्री पं. मक्खनलाल जी आदि विद्वानों के सहयोग से 'अंतर्जातीय विवाह शास्त्रानुकूल नहीं है, यह शास्त्रविरुद्ध है'- यह प्रस्ताव पास कराना चाहते थे। इसका चक्रव्यूह रचा गया। श्री पं. देवकीनन्दन जी को कारंजा से बुलाया गया। पं. जी अंतर्जातीय विवाह को आगम विरुद्ध नहीं मानते थे। वहाँ पं. जी के साथ, पं. श्री धन्नालाल जी के साथ गरमा-गरमी भी हुई। रात्रि में विषयसमिति में दर्दनाक दृश्य उपस्थित हुआ। पं. जी को दबाने का बहुत प्रयास किया गया। उन्होंने कहा कि विदर्भ में गंगेरवाल जैन जाति के 100-200 सगोत्री घर हैं। उन्होंने कहा कि सगोत्री शादी की अपेक्षा साधर्मी बंधुओं में परस्पर विवाह करना अधिक अच्छा है। इससे जैनजातियाँ बनी रहेंगी।

दूसरे दिन शास्त्रार्थ हेतु प्रतिपक्षियों ने बहुत प्रयास किया। पं. अजितकुमार शास्त्री और पं. शोभाचंद जी भारिल्ल ने पं. जी का सहयोग करने को कहा, किन्तु पं. देवकीनन्दन जी ने विश्वासपूर्ण शब्दों में कहा- 'मुझे और शास्त्रों के प्रमाणों की कोई आवश्यकता नहीं है, मेरा सागारधर्मामृत इस के लिए काफी है।' पं. जी सा. ने पू. आचार्यश्री को भी सचेत किया- 'महाराज! मुझे शास्त्रार्थ के लिए सभा में खड़ा मत करिए। सभा जीतना मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल है।'

दो दिन तक पूरा प्रयत्न करके शास्त्रार्थ टाला ही गया। चर्चा मात्र में गर्मी पूरी वह गयी। '**भाव्यवश्यं भवेदेव**' होनहार हो कर होती ही है। स्वयं सभापति दोशी जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पुरुषार्थी सुपुत्र श्री अरविंद भाई का अंतर्जातीय विवाह हुआ और शास्त्रार्थ के लिए अगुवा बनाए गए पं. जी सा. की विचारधारा को प्रश्नचिन्हित कर दिया। अभी भी सजातीय विवाह के समर्थन-कर्त्ताओं के घर में अंतर्जातीय और विजातीय लड़कियाँ विवाहित होकर घर की शोभा बढ़ा रही हैं। विचित्र विरोधाभास है आगमज्ञ एवं समाजसुधारकों के जीवन में। (स्मृतिग्रंथ, पृ. 98/99)

सागारधर्मामृत : उक्त प्रकरण पढ़कर सागारधर्मामृत पढ़ने की प्रेरणा हुई। उसके एकादश अध्याय (द्वितीय अध्याय) का श्लोक इस प्रकार है-

आधानादिक्रियामन्त्र-व्रताद्यच्छेदवाञ्छया ।
प्रदेयानि सधर्मेभ्यः कन्यादीनि यथोचितम्॥ 57॥

अर्थ- गर्भाधान आदि क्रियाएँ उन क्रियाओं संबंधी मंत्र अथवा पंच नमस्कार मंत्र और मद्य आदि के त्यागरूप व्रतों को सदा बनाए रखने की इच्छा से यथायोग्य कन्या आदि साधर्मी को देना चाहिए। विशेषार्थ में लिखा है कि यदि लड़की अजैन कुल में जाती है तो उसके व्रत, नियम, देव-पूजा, पात्रदान सब छूट जाते हैं। इस तरह से धर्म ही छूट जाता है। यदि अपने समान न मिले तो मध्यम पात्र को भी देने का विधान है, किन्तु विधर्मी या अधर्मी को देने का विधान नहीं किया है।

श्लोक 58 में कन्यादान की विधि और उसका फल दिया है। विशेषार्थ में लिखा है कि भारत में विवाहिता को केवल पत्नी नहीं कहते, धर्मपत्नी कहते हैं क्योंकि वह पति के धर्म की भी सहचारिणी होती है। पत्नी के योग्य होने पर ही, पति का भी योगक्षेम चलता है और धर्मसाधन होता है।

श्लोक 59 में कहा है कि सत्कन्या देनेवाले पिता को अपने साधर्मी का उपकार करने से महान् पुण्य बंध होता है। विवाहसंबंध विभिन्न गोत्रवाले साधर्मी बन्धुओं में होता है। यदि लड़की जन्मजात जैन नहीं है तो, उसको महापुराण के 38-39 पर्वों में वर्णित विधि से जैनधर्म में दीक्षित करके विवाह करना चाहिए। यही शास्त्र की आज्ञा है। साधर्मी अर्थात् अंतर्जातीय विवाह मान्य है, आगमोक्त है। सजातीय संबंध न मिले तो अंतर्जातीय साधर्मी विवाह आगमोक्त है।

आदिपुराण-भाग 1 : आदिब्रह्मा भ. ऋषभदेव ने प्रजाजनों के हितार्थ क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की स्थापना कर, आजीविका हेतु असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प का ज्ञान कराया। धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ और बाद में मोक्ष का मार्ग बताया। वर्णमाला और अङ्क विद्या की शिक्षा दी। त्रिवर्ण समाज व्यवस्था में उन्होंने राज्य शासन एवं प्रजा-समाज की व्यवस्था के नियम बनाए। आपने वर्ण व्यवस्था की सुरक्षा हेतु विवाह के नियम बनाए।

वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत विवाह व्यवस्था का वर्णन सोलहवें पर्व के श्लोक 247 में है, जो इस प्रकार है-

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या तां स्वां च नैगमः।
वहेत् स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः॥

(16-247)

अर्थ- शूद्र, शूद्र कन्या के साथ ही विवाह करे, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कन्या से विवाह नहीं कर सकता। वैश्य, वैश्य कन्या और शूद्र कन्या के साथ विवाह करे। क्षत्रिय, क्षत्रिय कन्या, वैश्य कन्या और शूद्र कन्या के साथ विवाह करे तथा ब्राह्मण, ब्राह्मण कन्या के साथ ही विवाह करे, परन्तु कभी किसी देश में वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कन्याओं के साथ भी विवाह कर सकता है।

(आदि पुराण, भाग-1, पृ. 368)

धवला के अनुसार एकेन्द्रियादि पाँच जातियाँ होती हैं और अतीत जातिरूप स्थान भी है। (धवला 2/1-1/412/4)। यह प्रस्तुत प्रकरण से असम्बद्ध है।

आचार्य कल्प पं. आशाधरजी कृत सागारधर्मामृत एवं आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण की समाजव्यवस्था से यह स्पष्ट है कि वर्णों की स्थिति के अनुसार साधर्मी बन्धुओं के मध्य शादी-विवाह करना मान्य है। इसका फलित परिणाम यह है कि वैश्य साधर्मी वैश्य और साधर्मी शूद्र कन्या के साथ भी विवाह कर सकता है। ऐसी स्थिति में साधर्मी जैन उपजातियों के मध्य विवाह-संस्कार होना सहज-सामान्य है, इसमें आगमिक बाधा नहीं है। विधर्मी वैश्य एवं सगोत्री-सहधर्मी के मध्य विवाह सम्बन्ध वर्जित है। पं. आशाधर जी ने यह अवश्य निर्देश दिया है कि कन्या निर्दोष हो, वर कुलीन और सुशील हो। कहा है- कुल, शील, सनाथता, विद्या, धन, शरीर और आयु इन सात गुणों की परीक्षा करके ही कन्या देनी चाहिए। प्रथम कुल को स्थान दिया है। अकुलीन को कन्या कभी भी नहीं देना चाहिए।

प्रख्यात शोधमनीषी स्व. श्री नाथूरामजी प्रेमी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसार दक्षिण महाराष्ट्र एवं कर्नाटक प्रांत की चार जैन जातियों यथा-पंचम, चतुर्थ, कासार-बोगार एवं शेतवालों में परस्पर रोटी-व्यवहार होता है। इन सभी जातियों में विधवा-पुनर्विवाह जायज है। (जैन सा. और इति./पृ. 504-506)। विधवाविवाह की इस प्रथा को ध्यान में रखकर ही आचार्य श्री शांतिसागर जी (चतुर्थजाति) ने अपनी दीक्षा शास्त्रसम्मत बताते हुए यह स्पष्ट किया है कि उनके मातृ या पितृ पक्ष में कभी पुनर्विवाह नहीं हुआ। इस प्रकरण से समाजव्यवस्था और धर्मव्यवस्था की भिन्नता प्रकट होती है।

आचार्य शान्तिसागर जी का अभिमत

पं. श्री सुमेरचंद दिवाकर ने आचार्यश्री से प्रश्न किया- 'क्या यह सच है कि आप आहार-पूर्व गृहस्थ से प्रतिज्ञा कराते हैं कि विजातीय विवाह आगमविरुद्ध है। जो ऐसी प्रतिज्ञा नहीं लेते वहाँ आप आहार नहीं लेते?' इसके उत्तर में महाराजश्री ने कहा कि 'आहार दाता के यहाँ उपर्युक्त प्रतिबंध की बात मिथ्या है।'

(संदर्भ-जैनमित्र, दि. 6.1.1938, अङ्क 9वाँ, पौष सुदी 5, वीर संवत् 2464)।

निष्कर्ष- विद्यमान संदर्भ में जबकि अति खुली समाजव्यवस्था स्वतः प्रगट हो रही है, नेतृत्व और विद्वान्-समाजसुधारकों को विवाह व्यवस्था के संबंध में उपर्युक्त शास्त्रोक्त व्यवस्थानुसार उदारतापूर्वक विचार करना चाहिए, जिससे कि विजातीय-विधर्मी विवाह-सम्बन्धों पर नियंत्रण किया जा सके। ऐसे नियमों की स्थापना एवं उद्घोषणाओं से समाज की विकृतियाँ नहीं रुकेंगी, जिनका पालन उद्घोषक अपने परिवार में ही नहीं कर सकते और न ही आगमसम्मत हैं। अंतर्जातीय विवाहों के विरोध की अपेक्षा विजातीय-विधर्मी शादी-सम्बन्धों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए, अन्यथा आनेवाली पीढ़ियाँ धर्म-विहीन, संस्कार-विहीन हो जावेंगी। विधर्मी-विजातीय कन्या के साथ सम्बन्ध होने की स्थिति में उसके जैनधर्म में दीक्षित किये जाने की परम्परा स्थापित की जानी चाहिए और जैनकन्या विधर्मी वर के साथ विवाह न करे, इसके लिए समाज को जागरूक होना चाहिए, अपरिहार्यता की स्थिति में वर को जिनमत में दीक्षित करने का भी प्रयास किया जा सकता है। व्यावहारिक जागरूकता से लाभ होता है। सुधीजन मार्गदर्शन करें।

बी-269, ओ.पी.एम., अमलाई, शहडोल

सभी मंदिरों एवं तीर्थक्षेत्रों के ट्रस्टियों से विनम्र निवेदन

दिगम्बर जैन समाज के तीर्थक्षेत्रों की स्थितियाँ दिन-ब दिन बिगड़ती जा रही हैं। बड़वानी-क्षेत्र को बीस पंथी करार देने का अट्टहास चल रहा है। हर क्षेत्र के फोटो उतारकर रखे जा रहे हैं। बडवानी तीर्थक्षेत्र को तेरापंथी सिद्ध करने वाले के लिए ५१ हजार के पुरस्कार की घोषणा करते हुए पोस्टर का विमोचन प० श्री बाबूलालजी पाटोदी के करकमलों द्वारा बडनगर में किये जाने का समाचार मिला है। यही रवैया हर क्षेत्र में अपनाया जायेगा और विवाद बढ़ाया जायेगा। शुद्ध आम्नाय/तेरापंथ के विरोध में कार्य योजनाबद्ध तरीके से फैलाया जा रहा है। आपसे विनम्र निवेदन है कि इन आक्रमक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए कुछ कदम उठाना जरूरी है।

आप से हमारा विशेष निवेदन है कि बडवानी या इस प्रकार के सभी तीर्थक्षेत्रों की नियमावली (संविधान-डीड) में यह क्लॉज (नियम) होना चाहिए कि इस क्षेत्र में शुद्धाम्नाय/तेरापंथ या बीस पंथ के नीति-नियमों के अनुसार पूजा-अर्चा होगी। इसके विरोध में जाकर अगर कोई अन्य प्रकार से पूजा-अभिषेक करना चाहे तो उस पर उचित कार्यवाही की जायेगी। इस प्रकार के नियम अगर ट्रस्ट के आरंभिक संविधान (डीड) में नहीं हैं, तो नये सिरे से ट्रस्ट के सदस्यों को दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित कर उसका संविधान में (नये संशोधित प्रस्ताव का) निवेदन चॅरेटी कमिशन की ओर दर्ज करा दिया जाये, तो इसे भंग कोई नहीं कर सकेगा। इस तरीके से कम से कम मूल में जो जिस परिपाटी के तीर्थ/मंदिर हैं, वे अपनी परिपाटी (तेरा या बीस पंथी की) या क्षेत्र की पवित्रता कायम रख पायेंगे। अतः पुनश्य आपसे विनम्र निवेदन है कि कम से कम श्रवणबेलगोला में पारित प्रस्ताव के अनुसार जहाँ जो पूजा-अभिषेक पद्धति चल रही है, उसका स्पष्ट निर्देश करते हुए अपने क्षेत्र/मंदिर के संविधान में नियम बनाकर बोर्ड लगा दिये जायें। इस प्रकार कुटिलता से क्षेत्रों पर विवाद मचाने के प्रसंगों से बचा जा सकेगा।

विनीता प्रा. सौ. लीलावती जैन
संपादिका धर्ममंगल, औंध पुर्णे-411007

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सेवायतन

विमलकुमार सेठी

शाश्वत सिद्ध क्षेत्र श्री सम्मेदशिखर जी की पावनता की सुरक्षा एवं विकास की सार्थक पहल

परम पावन तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी जैन संस्कृति एवं जैन धर्मावलंबियों के आस्था का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। वर्तमान अवसर्पिणी युग के बीस तीर्थंकरों एवं असंख्यात मुनियों की निर्वाणभूमि होने कारण इस क्षेत्र का कण-कण पूजनीय है। परंतु आज हम जैन धर्मावलम्बियों की उपेक्षा, उदासीनता एवं अकर्मण्यता के कारण इस तीर्थराज की पावनता एवं सौन्दर्यता विलुप्त होती चली जा रही है। क्षेत्र के विकास की बात तो दूर इसकी सुरक्षा भी संदिग्ध हो चली है। इस चिन्तनीय विषय को लेकर अभी तक इस दिशा में कोई सार्थक पहल नहीं हुआ।

पुण्योदय से संत शिरोमणि प. पू. १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक, प्रखर वक्ता, युवा शिष्य प. पू. १०८ मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज का ससंघ इस पावन तीर्थ पर वंदनार्थ आगमन हुआ। पू. मुनि श्री का ध्यान जब इस तीर्थराज की बदहाली एवं दयनीय स्थिति की ओर आकृष्ट किया गया, तो उनका हृदय पीड़ा से भर गया और उनके अन्तःकरण में इस तीर्थराज के उद्धार की भावना स्वतः उमड़ने लगी।

पूज्य मुनिश्री ने अपने विभिन्न मांगलिक देशनाओं के माध्यम से हमें बताया की इस परम पावन तीर्थराज की पावनता को अक्षुण्ण रखने तथा क्षेत्र की स्थायी सुरक्षा सुनिश्चित करने एवं विकास का मार्ग प्रशस्त करने हेतु जैन समाज को स्थानीय ग्रामीण जनता के सर्वांगीण विकास के लिए जनहित के कार्यो में लगना होगा। स्थानीय जनता के उद्धार बिना इस क्षेत्र का उद्धार असंभव है। पूज्य मुनिश्री ने कहा कि अब स्थानीय ग्रामवासियों को भिक्षा नहीं व्यवस्था देनी होगी। उन्हें स्वावलम्बी बनाना होगा। उन्हें शिक्षा और संस्कार देना होगा। उन्हें इतना समर्थ बना देना होगा की अब उनका हाथ लेने के लिए नहीं देने के लिए उठने लगे। आज आवश्यकता है यहाँ के लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में जैन समाज सहभागी बने तथा उनके दुःख दर्द में शामिल हो ताकि कुंठा और निराशा से ग्रसित लोगों की सोच हम जैनियों के प्रति बदले। आधुनिक प्रगति, सभ्यता, संस्कार और विकास की किरण उनके दरवाजों तक पहुँचाना होगा ताकि उनका सर्वांगीण विकास हो सके, वे भी हमारे आपकी तरह सम्मानपूर्वक जीवन जी सकें। यदि ऐसा हम करेंगे तब जैन समुदाय एवं उसकी समृद्धि यहाँ के लोगों के लिए ईष्या का विषय नहीं श्रद्धा और अनुराग का विषय बन जायगा और तब स्वतः ही इस परम पावन तीर्थराज की पावनता, सुरक्षा और विकास का मार्ग सहजता से प्रशस्त हो जायगा।

पूज्य मुनिश्री की उपर्युक्त प्रेरणा एवं सत्प्रयत्नों से जैन समाज के सशक्त कर्णधार सक्रिय हुये और उन्होंने इस परम पावन तीर्थराज की पावनता सुरक्षा एवं विकास के लिए, पू. मुनिश्री की भावना के अनुरूप श्री सम्मेदशिखर जी के तलहटी में बसे, गाँवों के सर्वांगीण विकास एवं मानव सेवा के उपक्रम के रूप में 'श्री सेवायतन' संस्था का गठन करके एक सार्थक पहल की।

श्री सेवायतन ने पर्वतराज की तलहटी में बसे १४ गाँवों में से प्रथम चरण में २ गाँव बगदाहा एवं बीरेनगड्डा को गोद लेकर उनके विकास का कार्य प्रारंभ कर दिया है। ग्राम बगदाहा को 'आचार्य विद्यासागर आदर्श ग्राम' नाम देकर उसके समग्र विकास का कार्य किया जा रहा हैं। इस ग्राम में शुद्ध पेय जल उपलब्ध कराने के लिए चापाकल लगाए गये है, साक्षरता अभियान चलाया गया है। निःशुल्क चिकित्सा सेवा प्रदान की जा रही है, बच्चों के लिए पाठशाला खोली गयी है। नव चेतना शिविर लगाकर प्रौढ़ शिक्षा का अभियान चलाया गया जिसके परिणाम स्वरूप ९० प्रतिशत लोग साक्षर हो गये हैं। सरकारी सहयोग से स्ट्रीट लैम्प, बिजली, संपर्क सड़क प्रत्येक परिवार को सोलर लैंप आदि आधारभूत सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं।

दूसरा गाँव 'विरेनगड्डा' को 'मुनि प्रमाणसागर निरोगी ग्राम' नाम दिया गया है। इस ग्राम को भी बगदाहा ग्राम की तरह विकसित किय जा रहा है। संपूर्ण चिकित्सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नि:शुल्क प्रदान की जा रही है।

श्री सेवायतन द्वारा उपर्युक्त दोनों गाँवों में आर्ट ऑफ लिविंग के प्रवर्त्तक श्री रविशंकर जी के सहयोग से व्यक्तित्व-विकास-प्रशिक्षण-शिविर लगाकर ग्रामवासियों में स्वावलम्बन की भावना जाग्रत करते हुए उन्हें सद्-संस्कारों से संस्कारित कर नशामुक्त एवं शाकाहारी बनाने का प्रयत्न किया गया, जिसके परिणाम स्वरूप दोनों ग्राम के निवासी पूर्णत: नशामुक्त एवं शाकाहारी बन गये हैं। यह श्री सेवायतन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। विकास प्रशिक्षण शिविर से प्रशिक्षित ग्रामीण युवक एवं युवतियाँ अपने-अपने गाँवों में नशामुक्ति, शाकाहार, साक्षरता एवं सफाई आदि का कार्य कर गाँवों का कायाकल्प कर रहे हैं।

पर्वत पर बसे लोगों को, जिनके वजह से पर्वत की पवित्रता नष्ट हो रही है, नीचे लाने के एिल वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था की गयी है, तथा पर्वत पर बसे भिक्षुओं को भी नीचे लाने के लिए प्रयास किया जा रहा है।

श्री शिखरजी के आस-पास में बसे गाँवों की सबसे बड़ी समस्या, बेरोजगारी और बेकारी की है, इसे दूर करने के लिए संत शिरोमणि प.पू. १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की भावना एवं आशीर्वाद से प्रेरित प.पू. १०८ मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज की प्रेरणा से श्री सेवायतन ने झारखण्ड सरकार के सहयोग से ग्रामवासियों को दुधारू गाय देकर उन्हें पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन के व्यवसाय से जोड़कर बेरोजगारी एवं बेकारी समाप्त करने की योजना बनाई है। झारखण्ड सरकार मधुवन में मिल्क चिलिंग प्लाण्ट स्थापित कर ग्रामवासियों से दूध लेकर प्लाण्ट के माध्यम से श्री सेवायतन ब्राण्ड दूध की आपूर्ति खुले बाजार में करेगी। इससे ग्रामवासियों को सुनिश्चित रोजगार मिलेगा और स्थानीय लोगों एवं यात्रियों को शुद्ध दूध। इस योजना से प्रति परिवार न्यूनतम १००/- प्रतिदिन की आय होगी। प्रथम चरण में ५०० नशामुक्त एवं शाकाहारी परिवार को झारखण्ड सरकार एवं श्री सेवायतन के सहयोग से दुधारू गायें प्रदान की जायेंगी। भविष्य में प.पू. १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के भावना के अनुरूप श्री शिखरजी के आस पास के गाँवों को दुधारू गाय प्रदान कर। 'अमूल गाँव' की तरह परिवर्तित कर दिया जायेगा।

ग्रामवासियों को बेहतर चिकित्सा प्रदान करने हेतु श्री सेवायतन के माध्यम से यहाँ एक नि:शुल्क होमियोपैथिक चिकित्सालय का शुभारम्भ श्री प्रकाशचन्द्र जी सेठी राँची वालों के सौजन्य से उनके पू. पिताजी स्व. कन्हैयालाल जी सेठी जशपुर निवासी के पुण्य स्मृति में किया गया। इस चिकित्सालय में कोरवा (छत्तीसगढ़) नगर के प्रसिद्ध चिकित्सक श्री एम.के. जैन ने जन कल्याणार्थ अपनी सेवा प्रदान करने का संकल्प प.पू. १०८ मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज के चरणों में व्यक्त किया जिसकी लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

श्री सेवायतन अपनी स्वास्थ्य-सेवा-योजना के अन्तर्गत यहाँ शीघ्र ही श्री गजराज जी जैन गंगवाल दिल्ली के सौजन्य से उनके पूज्य पिताजी स्व. पूनमचन्द्र जी गंगवाल झरिया की पुण्य स्मृति में पूनमचन्द्र कमलादेवी गंगवाल रोग जाँच केन्द्र (डायग्नोस्टिक सेण्टर) की स्थापना करने जा रहा है। जिससे गंभीर रोगों का निदान स्थानीय स्तर पर ही सुलभ हो जायेगा। श्री पूनमचन्द्र जी गंगवाल झरिया निवासी जैन समाज के प्रसिद्ध समाजसेवी, उदारमन, तीर्थभक्त एवं मुनिभक्त व्यक्तित्व के धनी थे। प्रसन्नता है उनके पुत्र भी उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए, समाज सेवा के कार्यक्रम में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं।

श्री सेवायतन ने शिक्षा के क्षेत्र में सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से प्रत्येक स्कूल के बच्चों को २-२ सेट पोशाकें नि:शुल्क प्रदान करने की योजना बनायी है तथा मेघावी किन्तु आर्थिक दृष्टि से कमजोर छात्रों को उच्च शिक्षा हेतु चयन कर उन्हें उच्च शिक्षा नि:शुल्क प्रदान करने की योजना बना रहा है, जो शीघ्र ही क्रियान्वित किया जायेगा। १२०० छात्र-छात्राओं को नि:शुल्क पोशाकें श्री संजय जी जैन (नोयडा) के सहयोग से दी जा रही हैं।

श्री सेवायतन द्वारा श्री शिखरजी में ग्रामीण विकास एवं मानव सेवा की दिशा में किया गया उपर्युक्त कार्य मात्र एक वर्ष की उपलब्धि है। इन कार्यों का यहाँ के ग्रामवासियों एवं बुद्धिजीवियों पर बड़ा सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। स्थानीय लोगों के सोच में बदलाव आ रहा है। परन्तु इस दिशा में अभी बहुत काम करना है, जिसके लिए समस्त जैन जगत के सहयोग की अपेक्षा है।

श्री सेवायतन की गतिविधियों के संचालन के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोलकात्ता-निवासी उदारमना श्री कैलाशचन्द्र जी जैन घी वाले (भारत ट्रेडर्स) द्वारा अपनी भूमि पर भव्य भवन का निर्माण कराकर श्री सेवायतन को प्रदान किया गया है। साथ ही विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों के संचालन हेतु झारखण्ड सरकार द्वारा टी.पी.सी. भवन का निर्माण करा कर दिया जा रहा है।

प.पू. १०८ मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज ने होली-अवकाश के प्रसंग में यहाँ आयोजित विभिन्न विधान-आयोजनों के मध्य श्री सेवायतन के सक्रिय कार्यकर्त्ताओं को उनकी सक्रियता के लिए आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा कि जैनधर्मावलम्बियों को श्री सेवायतन के लिए उदारतापूर्वक मुक्तहस्त से दान एवं सक्रिय सहयोग देना चाहिये। पूज्य मुनिश्री ने कहा कि श्री सेवायतन को दिया गया सहयोग पर्वतराज की वन्दना तुल्य पुण्य कार्य है।

श्री सेवायतन, कुन्दकुन्दमार्ग
मधुवन, सम्मेद शिखर जी,
जिला-गिरीडीह (झारखण्ड) भारत
सम्पर्क सूत्र- 09431149900, 09431144901,
09431140177, 06558 232428

'पलट गये भाव' नाटक का भावभीना मंचन

मदनगंज-किशनगढ़ में श्री महावीरजयन्ती के शुभ अवसर पर महासमिति के तत्त्वाधान में आदिनाथ भवन में नाटक (पलट गए भाव) सहित अन्य धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रम का भव्य आयोजन समारोह-पूर्वक सम्पन्न हुआ। समाज सेविका श्रीमती जीवनीबाई लुहाड़िया के मुख्य आतिथ्य में, श्रीमती सरिता पहाड़िया की अध्यक्षता व श्रीमती विमलादेवी पाटोदी के विशिष्ट आतिथ्य में आयोजित इस कार्यक्रम की शुरुआत तृप्ति बोहरा ने मंगलाचरण से की। देवशास्त्र गुरु की स्तुति श्रीमती शांता पाटनी, रजनी अजमेरा व संगीता गंगवाल की टीम ने की। नाटक **'पलट गए भाव'** में पदमा कासलीवाल, आशा अजमेरा, टीना बज व आचुकी बाई ने मुख्य भूमिकायें निभाईं। सामुहिक नृत्य **थाने नैना में रमाल्युं** श्वेता वेद रजनी अजमेरा, आशा बड़जात्या, संगीता काला, सिम्पल बाकलीवाल, मोनिका गंगवाल द्वारा प्रस्तुत किया गया। संगीत व नृत्य के माध्यम से भगवान् महावीर के गर्भ से लेकर वैराग्य लेने तक के दृश्यों को आकर्षित ढंग से दिखाया गया। माता त्रिशला बनी श्रीमती सुशीला पाटनी, सिद्धार्थ बनी, श्रीमती शांता पाटनी व महावीर बनी कु. शिखा गंगवाल ने वैराग्य के दृश्य को इतना मार्मिकता पूर्वक प्रस्तुत किया की सभी

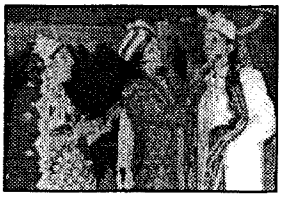

दर्शक भाव विभोर हो गये। श्रीमती सुलेखा बाकलीवाल, श्रीमती इन्द्रा गोधा, श्रीमती सुनिता सेठी, टीम द्वारा कव्वाली **'त्रिशला ने ललना जाया है'** प्रस्तुत की गई। दिगम्बर जैन पाठशाला के बच्चों द्वारा **'रेल का डिब्बा'** प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम का निर्देशन श्रीमती आशा अजमेरा व शांति देवी गंगवाल ने किया। मंच संचालन डॉ. तृप्ति बोहरा व रजनी अजमेरा द्वारा किया गया। इस अवसर पर मण्डल की अध्यक्षता श्रीमती शांता पाटनी, मंत्री आशा अजमेरा, सांस्कृतिक मंत्री शशीप्रभा बज दिगम्बर जैन पाठशाला की मंत्री शांति देवी गंगवाल, नवरतन दगड़ा, डॉ. किरण माला जैन ने अतिथियों का माला व तिलक लगाकर स्वागत किया। मण्डल की अध्यक्षा श्रीमती शांता पाटनी ने कार्यक्रम के अन्त में सभी का आभार व धन्यवाद व्यक्त किया।

वक्त की लहरों से टकराते हुए बढ़ जाइये।
फेर कर मुँह, जिन्दगी का सामना मुमकिन नहीं॥
वाहिद

देखा गया है अक्सर नाकामियों के बाद,
कुछ हादसात ले के उभरती है जिन्दगी।
चकबस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिस्किट और दिग्भ्रमित ग्राहक

सब प्रकार के पॅकेज्ड फूड के लिए सरकार ने कानून बनाये हैं। उस कानून के तहत सभी खाद्य पदार्थों पर शाकाहारी या मांसाहारी लिखना अनिवार्य है। परंतु, दुर्भाग्य की बात है कि इस कानून पर अमल करने वाले सरकारी अधिकारी रिश्वत के चंगुल में फँसते हैं और इन पॅकेज्ड फूड के कानून से छुटकारा पाने के कई अवैध मार्ग अपनाये जाते हैं। मछली, अंडे या मांस जिन पदार्थों में मिलाया जाता हो, उन पर लाल निशान होना आवश्यक है और जिन पदार्थों में शाकाहारी पदार्थ मिलाये गये हैं, उन पर हरा निशान आवश्यक है। यह हरा निशान ही अब ग्राहकों को दिग्भ्रमित कराने के लिए और फँसाने के लिए उपयोग में लाया जा रहा है। ऐसे कई केसेस हैं जिनमें मांसाहारी पदार्थ उपयोग में लाये जाते है और वे विटामिन के नाम पर चला दिए जाते हैं। ग्राहकों को कभी नहीं बताया जाता है कि विटामिन ए मछली तेल से किया गया उत्पादन है। ऐसे अनेक पदार्थों पर हरा निशान भी नहीं लगाया जाता। मिठाई में भी ये ही मांसाहारी पदार्थ उपयोग में लाये जाते हैं, यह जानकर कई शाकाहारी सज्जनों को चक्कर आ जायेगा। (कुछ मंदिरों में महावीर जयंती के अवसर पर बीमार लोगों को बिस्किट बाँटे जाते हैं। क्या यह उचित है?)

बिस्किट-कितने शाकाहारी और कितने मांसाहारी?

कुछ महिनों पहले 24 लोकसभा सदस्यों ने केंद्रीय अन्न प्रक्रिया मंत्रालय की ओर बेकरी माल और बिस्किट उत्पादन कम्पनियों की जाँच करने की माँग की थी। उनकी शिकायत के अनुसार इन खासदारों ने आरोप लगाया है कि बेकरी माल और बिस्टिकों में प्राणियों की चरबी (Animal Fat) उपयोग में लायी जाती है। यह चरबी सुअर, गाय, कुत्ता और बंदरों को कत्ल कर बिस्किट उत्पादनों में उपयोग में लायी जाती है, इस गम्भीर शिकायत के तहत देशभर में ब्रिटेनिया, मिल्क बिक्कीज, मेरी गोल्ड, टायगर, गुड डे, पार्ले जी, मोनॅको, हाईड और सिक इन कम्पनियों की जाँच केन्द्र सरकार ने आरंभ कर दी है। इस से कुछ गम्भीर बातें ग्राहकों के सामने आ रही हैं।

बिस्किट कैसे बनते हैं?

आटा, पानी में कई घटक मिला कर बिस्किट बनाये जाते हैं। इनमें रंग, सुगंधित द्रव्य प्रिजर्वेटिव्ज, अँटी-ऑक्सीडंट, थिकनर्स, स्वीटनर्स, स्टॅबिलाज़र्स, ॲसिडिटी, रेग्युलेटर्स इनमें से अनेक ॲटिक्विज, प्राणीजन्य पदार्थो से बनाये जाते हैं। उदाहरण अन्नपदार्थ और पेय पदार्थों में लाल रंग कोचिनियल बीटल्स (Cochineal Beetle) से बनाया जाता है। मेक्सिकन कीड़ों से यह रंग बनता है। इसका मतलब यह है कि यह रंग वनस्पतिजन्य नहीं है।

इ-नबर्स- बिस्किट के पैकेट पर देखिए उस पर (E-Numbers) लिखे होते हैं। योरापीय देशों में '**इ-नम्बर**' की पद्धति आवश्यक की है। पार्ले जी-का नया 300 ग्राम का पैक लीजिए, उस पर ध्यान से पढ़िए, उसमें इम्युलसि-फायर्स 322, या 471 और 481 नम्बर छपा हुआ है। कुछ माल पर कॅल्शियम सॉल्ट, (A 233 S > O) कंडिशनर 223 और इस प्रकार के इ-नम्बर अत्यंत बारीक अक्षरों में छपे हुए होते हैं, परंतु पढ़ सकते हैं।

सच्ची रहस्यकथा तो यही से आरंभ होती है। देशभर के बिस्किट उत्पादक उपर्युक्त पदार्थ विदेशों से मँगाते हैं। उसके लिए केंद्र शासन से परमिट आवश्यक होता है। सब मांसाहारी अंतर्घटक हैं। इसके लिए मांसाहारी आयात परमिट (अनुज्ञापत्र) बिस्किट उत्पादक कम्पनियाँ सरकार से प्राप्त करती हैं। परन्तु देश में उन घटकों को शाकाहारी के नाम पर ग्राहकों को ठगा जाता है। अगर शाकाहारी माल मँगाना होता है तो उसके लिए मांसाहारी परमिट की क्या जरूरत थी? यह सादा, सरल प्रश्न है। केंद्र सरकार अन्न प्रक्रिया मंत्रालय को भी इसके बारे में 'ना खेद ना दुःख'! शाकाहारी जनता तो इसकी बलि चढ़ जाती है। विशेषत: अहिंसाधर्मीय जैन, ब्राह्मण आदि समाज के साथ तो यह सीधा धोखा है। निम्नलिखित नंबर्स उनके लिए नहीं हैं, यह ध्यान में रखा जाए। A-120, 441, 542, 904, 920 के साथ ही ल्यूसीन (Leuclen) और स्पर्मासेटी स्प्रेम (Spermaceti/ Sperm) इनके कोई नम्बर नहीं होते। व्हेल मछली के सिर पर का सफेद चरबीयुक्त पदार्थ ही स्पर्मासेटी है।

हिन्दी अनुवाद- सौ. लालीवती जैन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

जिज्ञासा- ६३ शलाका पुरुषों के शरीर का वर्ण बतायें?

समाधान- २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलदेव, ये सब मिलाकर ६३ शलाका पुरुष अर्थात् प्रसिद्ध पुरुष कहलाते हैं। इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में जो ६३ शलाकापुरुष हुये हैं, उनके शरीर का वर्ण इस प्रकार का आगम में पाया जाता है-

२४ तीर्थंकर- सामान्य से भगवान् चन्द्रप्रभ एवं भगवान् पुष्पदंत का श्वेत, भ. पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ का हरा, भ. नेमिनाथ एवं भ. मुनिसुव्रतनाथ का नीला, भ. पद्मप्रभ एवं भ. वासुपूज्य का लाल वर्ण था। शेष १६ तीर्थंकरों का शरीर तपाये हुए स्वर्णवत् था। इन वर्णों में सफेद एवं लाल वर्णवाले तीर्थंकरों के संबंध में सभी आचार्य एकमत हैं। परन्तु भ. सुपार्श्वनाथ एवं भ. पार्श्वनाथ का वर्ण हरिवंशपुराण एवं कल्याणमंदिर-स्तोत्र में कृष्ण तथा त्रिलोकसार एवं पार्श्वपुराण में नीलवर्ण कहा है। भ. नेमिनाथ एवं भ. मुनिसुव्रत का वर्ण, वरांगचरित्र, निजमलकल्प, अनगार-धर्मामृत, गौतमचरित्र, चर्चाशतक, त्रिलोकसार पार्श्वपुराण में काला कहा गया है। तपे हुये स्वर्ण वर्णवाले तीर्थंकरों के संबंध में सभी आचार्य एकमत हैं।

१२ चक्रवर्ती- सभी चक्रवर्तियों का वर्ण स्वर्णवत् कहा गया है।

९ बलदेव- बलदेवों के शरीर का वर्ण जंबूदीप पण्णत्ति, हरिवंशपुराण एंव उत्तरपुराण में श्वेत कहा है, जब कि तिलोयपण्णत्ति में स्वर्णवत् कहा गया है।

९ नारायण- इनके शरीर का वर्ण जंबूदीप-पण्णत्ति में नीला, हरिवंशपुराण में काला, उत्तरपुराण में नीला और काला तथा तिलोयपण्णत्ति में स्वर्णवत् कहा है। इसमें कई मत हैं।

९ प्रतिनारायण- इनके शरीर का वर्ण जंबूदीप पण्णत्ति के अनुसार नीला, तथा तिलोयपण्णत्ति के अनुसार स्वर्णवत् कहा गया है।

जिज्ञासा- दशधर्म के वर्णन में पहले उत्तम शौच आता है या उत्तम सत्य?

समाधान- वास्तविकता तो यह है कि कोई धर्म आगे पीछे नहीं आता। सभी दसों धर्म आत्मा के स्वभाव हैं। आचार्यों एवं मुनियों के द्वारा सदैव पालने योग्य हैं, तथा श्रावकों के द्वारा भी यथायोग्य नित्य पालन-योग्य हैं। परन्तु दशलक्षणपर्व में जब इनका प्रवचन होता है, तब चौथे दिन किस धर्म का प्रवचन होना चाहिये, इस पर कहीं-कहीं विवाद देखा जाता है। यह विवाद उचित नहीं है, फिर भी आचार्यों ने इनका क्रम किस प्रकार कहा है, उसे देखते हैं-

१. तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता आ. उमास्वामी तथा उनके सभी टीकाकारों ने उत्तम शौच के बाद उत्तम सत्य कहा है। इसी प्रकार स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, तत्त्वार्थ-सार तथा चामुंडरायरचित चारित्रसार में भी इसी प्रकार का वर्णन है।

२. आ. कुंदकुंद ने वारसाणुवेक्खा में, भ. सकल-कीर्ति ने मूलाचारप्रदीप में, ब्रह्मदेवसूरि ने बृहदद्रव्यसंग्रह में, आ. पद्मनंदि ने पद्मनंदि-पंचविंशातिका में, आ. जिनसेन ने आदिपुराण में तथा अमितगति-श्रावकाचार आदि में उत्तम सत्य के बाद उत्तम शौचधर्म कहा है।

३. आ. वट्टकेर ने मूलाचार में तथा वसुनंदिश्रावकाचार में धर्म का क्रम इस प्रकार कहा है- क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, तप, संयम, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य, सत्य तथा त्याग।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि आचार्यों ने इसका वर्णन कई प्रकार से किया है। अतः इस संबंध में विवाद उचित नहीं है।

प्रश्नकर्त्ता- डॉ० अभयदगडे कोपरगाँव।

जिज्ञासा- असंक्षेपाद्धाकाल का अर्थ, आवली का संख्यातवाँ भाग माना जाय या असंख्यातावाँ भाग माना जाय? जैनेन्द्रसिद्धान्तकोष में तो आवली का असंख्यातवाँ भाग कहा है?

समाधान- जैनेन्द्रसिद्धांतकोष के अनुसार आपने जो लिखा है वह ठीक है। परन्तु वह वर्णन ठीक नहीं है। कर्मकाण्ड गाथा १५८ की टीका करते हुये विशेषार्थ में इस प्रकार कहा है- 'आयुकर्म की जघन्य आबाधा' असंक्षेपाद्धा प्रमाण है। यह काल भी आवली के संख्यातवें भाग प्रमाण है। क्योंकि श्री धवल पु. ११ पृष्ठ २६९, तथा २७३ के अनुसार आयुकर्म की जघन्य आबाधा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुद्रभव संख्यातगुणा कहा है। इससे स्पष्ट है कि असंक्षेपाद्धाकाल, आवलि का **असंख्यातवाँ भाग न होकर, संख्यातवाँ भाग है।** पं. रतनचन्द्र जी मुख्तार ने भी इसी प्रकार कहा है।

प्रश्नकर्त्ता- सौ. ज्योति लोहाडे कोपरगाँव।

जिज्ञासा- क्या सम्यक् मिथ्यात्व एवं सम्यक् प्रकृति का उदय बंध में कारण है?

समाधान- यहाँ सबसे प्रथम यह विचार करना आवश्यक है कि बंध के कारण कौन हैं? तत्त्वार्थसूत्र अ. ८/१ में उमास्वामी ने कहा है- '**मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद कषाययोगा बन्धहेतवः। अर्थ**- मिथ्यादर्शन अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग बंध के कारण हैं।

यहाँ विचारणीय कि सम्यक्-मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति एवं इनके कारण होने वाले परिणाम उपर्युक्त कारणों में नहीं आते। ये दोनों, न तो मिथ्यात्व रूप ही हैं और न अन्य कारणों रूप। अतः इस सूत्र के अनुसार ये दोनों बंध के कारण सिद्ध नहीं होते।

२. आगे विचार करते हैं कि इन दोनों प्रकृतियों के उदय में होने वाले परिणाम कौन से भाव हैं-

अ- सम्यक् मिथ्यात्व के उदय में सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वरूप मिले जुले परिणाम होते हैं। ध.पु.५/१९८ में कहा है कि इसके उदय में सम्यक्त्वगुण का अंशरूप उदय रहता है अतः यह क्षायोपशमिक भाव है।

श्री षट्खंडागम/१४/१९/१८/में भी सम्यक्मिथ्यात्व एवं सम्यक्प्रकृति दोनों को क्षायोपशमिक कहा है।

धवला १/१/१६९ में इस प्रकार कहा है-

प्रश्न- मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होनेवाले जीव के क्षायोपशमिकभाव कैसे संभव है?

उत्तर- वह इस प्रकार है कि वर्तमान समय में मिथ्यात्वकर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय होने से, सत्ता में रहनेवाले उसी मिथ्यात्वकर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभाव-लक्षण उपशम होने से और सम्यग्मिथ्यात्व-कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय होने से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान पैदा होता है, इसलिये वह क्षायोपशमिक है।

इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय में जो मिश्र रूप परिणाम होते हैं, वे क्षायोपशमिक भाव हैं।

आ- सम्यक्प्रकृति के उदय में होनेवाला क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन भी क्षायोपशमिकभाव ही है। जैसा श्री षट्खण्डागम/१४/१९/१८ में (उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार) कहा गया है कि सम्यक् प्रकृति क्षायोपशमिक है।

इस तरह यह स्पष्ट हुआ कि इन दोनों प्रकृतियों के उदय में होने वाले परिणाम क्षायोपशमिक भाव हैं, अब यह विचार करना हैं कि क्षायोपशमिक भाव बंध में कारण होते हैं या नहीं। श्री धवला पु. ७ में इस प्रकार कहा है-

ओदइया बंधयरा, उवसमखयमिस्सया य मोक्खयरा।
भावो दु परिणमिओ, करणोभयवज्जिओ होदि॥ ३॥

अर्थ- औदयिक भाव बंध करनेवाले हैं, औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव मोक्ष के कारण हैं, तथा परिणामिक भाव बंध और मोक्ष दोनों के कारण से रहित है।

उपर्युक्त प्रमाण से यह स्पष्ट होता है कि क्षायोपशमिक भाव बंध में कारण नहीं हैं। अतः सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्व के उदय में होनेवाले भावों को, क्षायोपशमिक होने के कारण, बंध का कारण नहीं कहा जा सकता।

प्रश्नकर्त्ता- पवन कुमार जी तेजपुर।

जिज्ञासा- क्या शाश्वत भोगभूमियों में भी जघन्य आयु का विधान मानना चाहिये?

समाधान- शाश्वत भोगभूमियों अर्थात् देवकुरु-उत्तरकुरु इन उत्तम भोगभूमियों में, हरिक्षेत्र, रम्यकक्षेत्र इन मध्यम भोगभूमियों में तथा हैमवतक्षेत्र एवं हैरण्यवत क्षेत्र इन जघन्य भोगभूमियों में उत्कृष्ट आयु ३ पल्य, २ पल्य तथा १ पल्य एवं जघन्य आयु २ पल्य एकसमय, १ पल्य एक समय तथा पूर्वकोटि १ समय मानना आगम-सम्मत है। इसके प्रमाण इस प्रकार हैं-

१. श्री धवला पु. १४ पृष्ठ ३९८-९९ में इस प्रकार कहा है- **शंका**- उत्तरकुरु और देवकुरु में सब मनुष्य तीन पल्य की स्थितिवाले ही होते हैं, इसलिये 'तीन पल्य की स्थितिवाले के' यह विशेषण युक्त नहीं है।

समाधान- यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्य तीन पल्य की स्थितिवाले ही होते हैं, ऐसा कहने का फल वहाँ पर शेष आयुस्थिति के विकल्पों का निषेध करना है और इस सूत्र को छोड़कर अन्य सूत्र नहीं हैं, जिससे यह ज्ञात हो कि उत्तरकुरु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और देवकुरु के मनुष्य तीन पल्य की स्थितिवाले ही होते हैं, अतः यह विशेषण सफल है। अथवा एक समय अधिक दो पल्य से लेकर एक समय कम तीन पल्य तक के स्थिति-विकल्पों का निषेध करने के लिये सूत्र में तीन पल्य की स्थितिवाले पद का ग्रहण किया है। सर्वार्थसिद्धि के देवों की आयु जिस प्रकार निर्विकल्प होती है, उस प्रकार वहाँ की आयु निर्विकल्प नहीं होती, क्योंकि इस प्रकार की आयु की प्ररूपणा करनेवाला, सूत्र और व्याख्यान उपलब्ध नहीं होता। **भावार्थ**- देवकुरु-उत्तरकुरु में आयु तीन पल्य की ही होती है। दूसरे मत के अनुसार समयाधिक २ पल्य प्रमाण जघन्य आयु से लेकर ३ पल्य तक सभी आयु-विकल्प वहाँ होते है। ऐसी ही अन्य शाश्वत जघन्य एवं मध्यम भोगभूमि के संबंध में भी समझ लेना चाहिये।

२. श्री आचारसार अधिकार-११ में कहा है-

जघन्य-मध्यमोत्कृष्ट-भोगभूमिष्ववस्थितम्।
स्यादेकद्वित्रिपल्यायुर्नित्यास्वन्यासु तद्वरम्॥ ५६॥
पूर्वकोट्येकपल्यं च पल्यद्वयमिति त्रयम्।
समयेनाधिकं तासु नृतिर्यक्ष्ववरं क्रमात्॥ ५७॥

अर्थ- नित्य रहनेवाली देवकुरु-उत्तरकुरु आदि तथा प्रथम द्वितीय कालादि जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भोगभूमि में अवस्थित उन जीवों की उत्कृष्ट आयु एक, दो, तीन पल्य है। (५६)

उन्हीं भोगभूमियों में मनुष्य और तिर्यंचों में जघन्य आयु क्रम से १ समय अधिक पूर्व कोटि, एक समय अधिक एकपल्य और एक समय अधिक दो पल्य है, इस प्रकार तीनों जघन्य आयु हैं। (५७)

३. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग २ पृष्ठ २६४ पर उपर्युक्त प्रकार ही शाश्वत भोगभूमियों में उत्कृष्ट एवं जघन्य आयु कही गई है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा- 282002 (उ.प्र.)

विदेश में मची धर्म की धूम

बैंकांक, थायलेंड में महावीर जयंती एवं वेदी प्रतिष्ठा का कार्यक्रम 18 से 20 अप्रैल 2008 तीन दिन अभूतपूर्व धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। इस पूरे कार्यक्रम में विदेशों से (भारत से) 25-30 सधर्मी बन्धु भी सम्मलित हुये।

वर्तमान श्रेष्ठ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शिष्य ब्र. संजीव भैया कंटगी के कुशल निर्देशन में कार्यक्रम संपन्न हुआ। ब्र. भैया की कुशल आध्यात्मिक तत्त्वपरक शैली से संपूर्ण जैन समाज ने मिलकर कार्यक्रम को अभूतपूर्व बना दिया।

ज्ञातव्य हो विगत तीन वर्ष पूर्व दिगम्बर जैन मंदिर की स्थापना की गई थी। प्रारम्भ में एक भगवान् महावीर स्वामी की मूर्ति विराजमान थी, इस अवसर पर एक 7 फीट उत्तुंग सर्वतोभद्र स्तंभ में चार चतुर्मुखी भगवान् विराजमान किये गये।

ज्ञातव्य हो कि मंदिर जी में मूर्तियों को प्रतिष्ठित कराने व मारबल का परिकर व स्तंभ बनाने में वास्तुकार श्री राजकुमार जी कोठारी का बड़ा योगदान रहा।

बैंकांक में लगभग 100 दिगम्बर जैन समाज के परिवार निवास रत है। संपूर्ण समाज के श्रावक श्राविकाओं ने ब्र. संजीव भैया की ओजस्वी भाषाशैली से प्रभावित होकर सप्ताह में एक दिन अभिषेक-पूजन का नियम लेकर एक श्रेष्ठ कीर्तिमान स्थापित किया। ब्र. भैया ने कहा कि कार्यक्रम की सफलता का श्रेय उनके गुरुवर आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज को है। समाज ने निवेदन किया कि ऐसे भैया जी का पुनः बैंकाक में आगमन हो।

दिगम्बर जैन फाउंडेशन
बैकांक, थायलेंड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

''प्रवेश हेतु शीघ्रता करें''

वाराणसी के सुप्रसिद्ध श्री स्याद्वाद महाविद्यालय में सत्र 2008-2009 में प्रवेश के इच्छुक योग्य विद्यार्थियों का प्रवेश लेना हैं यहाँ पर सम्पूर्णानन्दक संस्कृत विश्व-विद्यालय से सम्बद्ध शास्त्री-आचार्य अध्ययन की व्यवस्था है। इस हेतु उत्तर मध्यमा अथवा संस्कृत विषय के साथ इण्टर (12वीं) एवं बी.ए. उत्तीर्ण छात्र प्रवेश ले सकते हैं। जैन दर्शन और प्राकृत विषय में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से शोध करनेवाले छात्रों को भी प्रवेश की सुविधा है। इस विद्यालय में साहित्य, व्याकारण, प्राकृत, जैन दर्शन और आधुनिक विषयों के साथ-साथ, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा संचालित धार्मिक परीक्षाओं हेतु अध्ययन कार्य होता है। लौकिक शिक्षा की भी यथासम्भव सुविधा प्रदान की जा सकती है। पूर्व प्रविष्ट छात्र 25 जुलाई से होने जा रहे सत्रारम्भ में ही विद्यालय में उपस्थित हों।

प्रो. फूलचन्द्र जैन प्रेमी
श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी

डॉ. रमेशचन्द्र जैन सहित दस विद्वान् श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति से सम्मानित

क्षेत्र की बहुमुखी योजनाओं में एक योजना श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति प्रदान समारोह है। इसके अंतर्गत अनेक वर्षों से विद्वान् पुरस्कार प्राप्त करते आ रहे हैं। इस वर्ष यह पुरस्कार दस विद्वानों को भगवान् महावीर जयन्ती (18 अप्रैल 2008) के दिन श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला में भव्य समारोह के साथ प्रदान किया गया। पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता थे- डॉ. आ. सुन्दर, मैसूर, प्रो. नागराज पूवणी, उजिरे, डॉ. बाला साहिब लोकापुर, बागलकोट, डॉ. किरणकान्त चौधरी, तिरुपति, प्रो. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर, डॉ. सत्यप्रकाश जैन, देहली, डॉ. नलिन के शास्त्री, बोधगया, डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर, श्री जे.टी.जी कलप्पा, हासन, श्रीमती नवरत्न इन्दुकुमार, चिक्कमंगलौर। इन सबको मुख्य अतिथि श्री अजीत कब्बिन ने सम्मानित किया तथा श्रीफल आदि भेंट कर पूज्यस्वामी जी ने अपना आशीर्वाद दिया। मुख्य अतिथि बंगलौर हाई कोर्ट के जज के रूप में सेवानिवृत हो चुके हैं। वे सौम्य तथा सज्जन-प्रकृति के हैं। उनके साथ उनकी पत्नी भी पधारी थीं। सभी के सम्मान में कन्नड भाषा के माध्यम से परिचय प्रस्तुत कर कन्नड एवं हिन्दी में प्रशस्ति समर्पित की गई तथा हार, माल्यार्पण एवं श्रीफल आदि से सम्मानित किया गया।

सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'
एल-६५, न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

डॉ. भागेन्दु जी के सम्मान से दमोह नगर गौरवान्वित

दमोह नगर के गौरव डॉ. भागचंद्र भागेन्दु को अखिल भारतीय तीर्थक्षेत्र वृषभांचल ध्यान केन्द्र दिल्ली की ओर से वर्ष के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् के रूप में सम्मानित करने की घोषणा की है। यह भव्य समारोह दिनांक 26 मई 2008 को बाल ब्रह्मचारिणी माँ कौशल के सान्निध्य में श्री मोतीलाल जी बोरा, भू.पू. मुख्यमंत्री म.प्र. एवं भू.पू. राज्यपाल उत्तर प्रदेश के कर कमलों से सम्मान राशि 51000/- प्रशस्त्री पत्र, शाल, श्रीफल से सम्मानित किया जावेगा।

अखिल भारतीय मैत्री ग्रुप संगठन के द्वारा प्रात: स्मरणीय परम पूज्य 108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महामुनिराज की कृतियों पर अनुशीलन एवं शोध खोज के लिए आचार्य श्री के परम शिष्य मुनिवर 108 क्षमासागर जी महाराज के सान्निध्य में पर्वराज श्रुत पंचमी पर समारोह पूर्वक तीर्थ क्षेत्र पटेरिया जी गढ़ाकोटा सागर मध्यप्रदेश में श्रेष्ठ विद्वान् डॉ. भागचंद जैन भागेन्दु को सम्मानित कर सम्मान समर्पित किया जावेगा यह समारोह 8 जून 2008 को सम्पन्न होगा।

श्री डॉ. भागेन्दु जी को जो राष्ट्रीय सम्मान मिला है उससे दमोह नगर का गौरव बढ़ा है। इस हेतु श्री दिगम्बर जैन पंचायत अध्यक्ष विमल लहरी, पूर्व अध्यक्ष वीरेन्द्र इटोरया, महामंत्री नरेन्द्र चौधरी ने अपने शुभभाव प्रगट करते हुए उनके क्रियाशील दीर्घआयु की कामना कर प्रसन्नता व्यक्त की है। उनके मित्रों हितैषियों तथा अनेक संस्थाओं ने उन्हें बधाइयाँ दी हैं।

नरेन्द्र चौधरी
महामंत्री-श्री दिग. जैन पंचायत, दमोह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

अनहोनी-1

तुमने सुना
कभी किसी वृक्ष ने
अपनी शाखाओं पर बने
पक्षी के घोंसले
अपने ही हाथों तोड़कर
नीचे फेंक दिये हों?
तुमने नहीं सुना,
मैंने भी नहीं सुना
ऐसा तो
किसी ने
कभी नहीं सुना।

खिड़की

सम्बन्धों के बीच
पहले
एक दीवार
हम खुद
खड़ी करते हैं
फिर उसमें
एक खिड़की
लगाते हैं
पर जिन्दगी-भर
करीब रहकर भी
हम खुलकर
कहाँ मिल पाते हैं?

अनहोनी-2

तुमने देखा
कभी आँधी-पानी तूफान में
वृक्ष से
पक्षी को घोंसला
टूटकर गिरते वक्त
वृक्ष का पत्ता-पत्ता
न काँपा हो?
कि आँसुओं की तरह
फूल और फल
न गिरे हों?
तुमने नहीं देखा
मैंने भी नहीं देखा,
ऐसा होते
किसी ने
कभी नहीं देखा।

सावधान

दर्पण
तोड़ने से पहले
इतना जरूर देख लेना,
कहीं
दर्पण में बना
तुम्हारा प्रतिबिम्ब
टूट न जाए!

'अपना घर' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

UPHIN/2006/16750

संस्कृति और संस्कारों की ओर बढ़ते चलें, आधुनिक शिक्षा के साथ

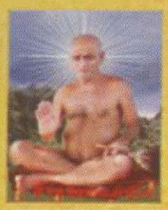

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल

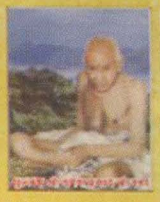

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय एवं छात्रावास

पिसनहारी मढ़िया के सामने, जबलपुर -03

प्रवेश प्रारंभ

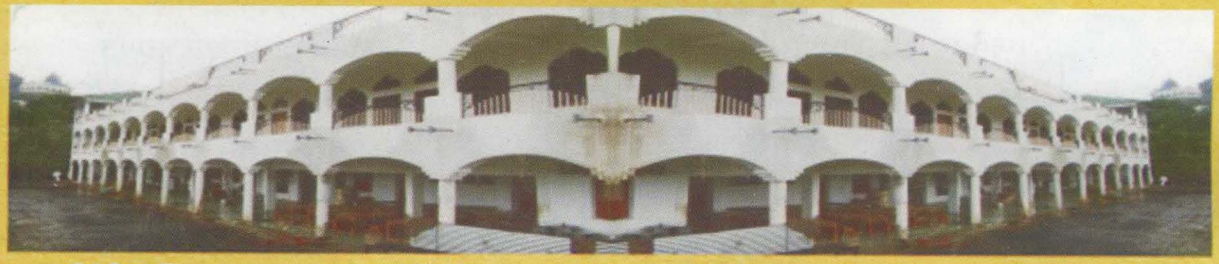

छात्रों के लिए : कक्षा 6 वीं से 12 वीं, उच्च शिक्षण हेतु, सुरम्य वातावरण, धार्मिकता से परिपूर्ण, सभी वर्गों के लिए, संख्या सीमित है

1. 6 एकड़ भूमि का विशाल प्रांगण
2. उच्चतम, स्वच्छ आवासीय व्यवस्था
3. प्रात: कालीन योगाभ्यास क्रियाऐं
4. प्रत्येक कक्षा में सीमित छात्र संख्या
5. प्रशिक्षित एवं अनुभवी शिक्षकों द्वारा अध्यापन
6. धार्मिक क्रियाओं का समयानुसार प्रशिक्षण
7. आधुनिक सुविधायुक्त अध्ययन कक्ष
8. सरस शुद्ध सात्विक भोजन व्यवस्था
9. आधुनिक कम्प्यूटर लैब
10. उच्च संगीतज्ञों द्वारा संगीत शिक्षा
11. विशालतम प्रयोगशाला
12. वार्षिक उच्च प्राप्तांकों पर शासकीय उच्चाधिकारियों द्वारा सम्मान

सम्पर्क -ब्र. जिनेश जैन 0761-2672991, 2671828, 9425984533, 9200299320, 9301338591

निवेदक - श्री वर्णी दिग. जैन गुरूकुल ट्रस्ट कमेटी एवं सदस्य गण

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org